कारवाँ आगे बढ़े

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक 436

कारवाँ आगे बढ़े
(ललित निबन्ध)

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

प्रथम संस्करण 1984

मूल्य 20/-

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी/45 47, कनॉट प्लेस,
नयी दिल्ली 110001

मुद्रक
अंकित प्रिंटिंग प्रेस
शाहदरा दिल्ली 1100032

आवरण शिल्पी हरिपाल त्यागी

KARVAN AAGE BARHE (Essays) by Kanhaiya Lal Mishra Prabhakar Published by Bharatiya Jnanpith, B/45 47 Connaught Place, New Delhi 110001 Printed at Ankit Printing Press Shahdara First Edition 1984 Rs 20/-

अपनी जन्मभूमि देवबन्द को—

- जिसकी ममतामयी मिट्टी में पल खेलकर मैं बड़ा हुआ
- जिसके प्रातमण्डल पुस्तकालय में बैठकर मैंने पाठ्यक्रम की तरह सरस्वती, माधुरी, चाँद, सुधा आदि पत्रों और चन्द्रकान्ता सन्तति से प्रेमाश्रम तक के विषयक्षेत्र में फैले उपन्यासों कहानियों, इतिहास ग्रन्थों और वैचारिक ग्रन्थों को पढ़ स्कूली शिक्षा के अभाव में भी जीवन के व्यापक क्षितिज को आत्मसात किया
- जहाँ मेरे जीवन में नागरिकता सामाजिकता मानव निष्ठा साहित्य सृजना एवं पत्रकारिता के अंकुर फूटे और अन्धश्रद्धा की जड़ता के आत्मघाती बन्धन टूटे
- जहाँ मैंने गांधीजी की छाया में अपनी मातृभूमि भारत की स्वतन्त्रता के संघर्ष में अपने पारिवारिक मोह की आहुति दे जीवन की कृतार्थता का अनुभव किया

और

- जिस राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हितहरिवंश और भारत की प्रथम पार्लियामेंटेरियन महिला श्रीमती लेखवती जैन की जन्मभूमि और भारतीय जैन समाज में विचार क्रांति के प्रथम पुरोधा बाबू सूरजभान वकील, क्रान्तिकारी मौलाना उबैदुल्लाह सिन्धी, मौलाना महमूदुल हसन एवं शेखुल इस्लाम मौ० हुसैन अहमद मदनी की कर्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है

यह कृति सादर समर्पित।

—कn० ला० प्रभाकर

अगले पन्नो मे

• •

भारत के एक नागरिक विदेश गय। एक बार वे यूरोप के किसी देश मे रेल से यात्रा कर रहे थे। उन्होने अपने दोनो पैर बूट सहित सामने की सीट पर रख लिय। उनके लिए यह एक साधारण बात थी, क्योकि हमारे देश मे पढे-अनपढे सभी ऐसा करत हैं।

उनके पास ही बैठे थ एक बूढे सज्जन। उन्होने अपने ओवरकोट की जेब से पुराने अखबार का साफ कटा-छँटा एक टुकडा निकाला और भारत के नागरिक से कहा— 'कृपा कर जरा अपने पैर उठाइए।'

इन्होने पैर उठाये, तो उन्होने पैरो की जगह वह कागज रख दिया और नम्रता से कहा—"अब आप पैर रख लीजिए। इस तरह आपके आराम मे खलल नही पडेगा और मेरे देश की यह चीज—सीट की गद्दी—भी खराब नही होगी।"

धन्यवाद देकर भारत के नागरिक ने कागज पर पैर रख लिये। थोडी देर बाद बूढे सज्जन ने अपनी टोकरी से केले निकाले, छीलकर खाये और उनके छिलको को वैसे ही एक कागज मे लपेटकर जेब मे रख लिया।

भारत के नागरिक से न रहा गया और पूछ ही लिया— 'बुजुर्गवार, ये छिलके आपने जेब मे क्या रख लिये हैं ?" उत्तर मिला—"यहाँ इन्हें मैं कहाँ डालता ! अब स्टेशन पर उतरकर इन्ह कूडेदान मे डाल दूगा।'

एक होता है नागरिक का अपना चरित्र और एक होता है नागरिक का राष्ट्रीय चरित्र। वह बूढा राष्ट्रीय चरित्र का कितना उत्तम नमूना था कि उसे अपने देश की हरेक चीज की सुरक्षा का भी ध्यान था और सफाई स्वच्छता का भी।

भारत के एक नागरिक, जो उम्र मे जवान थे और फशन मे पॅरिस किसी स्टेशन से लखनऊ के लिए रेल मे बठे। दो सीटो के बीच, दीवार से

सटाकर, कुली ने उनका होल्डॉल खडा कर दिया। पास ही वे बैठ गये। पेंशन साहबी, पर आदत नवाबी! हर घंटे पान खायें और पान भी तम्बाकू वाला। अब हालत यह कि सामने की सीट पर दोना पैर रखे, वे पसरे है और जहा दूसरे मुसाफिर पैर रखते हैं, वहाँ पान की लुआबदार पीक थूके जा रहे हैं।

यह आ गया लखनऊ, वे कूदकर प्लेटफाम पर आ गये। उनके इशारे पर कुली ने उनका बिस्तर छुआ, तो बोझ ज्यादा। उसने झटके के साथ बिस्तर को दोनो सीटो के बीच, नीचे के तख्त पर डाला और घसीटकर दरवाज़े पर ले आया। उस बेचारे को क्या पता कि यहा पान की पीक का परनाला बह रहा है, पर बिस्तर उस परनाले के ऊपर से आया, तो पीक उसे प्यारे दोस्त की तरह लिपट गयी। साहब का नया होल्डॉल अब एकदम रंगीन, जैसे किसी सौखतड ने उस पर पेंटिंग का अभ्यास किया हो।

साहब ने प्लेटफाम पर खडे खडे यह देखा, तो चल्ला पडे— 'अबे, तू बडा बेवकूफ है।' उसी सीट पर एक मसखरे सज्जन बैठे थे। खिडकी से बाहर झाककर बोले—"साहब बहादुर, यह कुली बडा नही छोटा बेवकूफ है। बडा बेवकूफ तो वह था, जो कुली के आने म पहले इस डब्बे मे थूक गया।' रट र रह गये बेचारे।

एक होता है नागरिक का अपना चरित्र और एक होता है उसका राष्ट्रीय चरित्र। यह साहब बहादुर राष्ट्रीय चरित्र का कितना घटिया नमूना थे कि अपने देश की चीजो की सुरक्षा का भाव तो उनमे कहाँ होता, जब उन्ह स्वच्छ साफ रखने की भावना भी उनमे नही थी।

1948 म मुझे तीसरी बार प्लूरिसी हुई। मैं चिकित्सा और विश्राम के लिए कुछ महीने मसूरी रहा। उन्ही दिनो की डायरी के दो प ने यहा प्रस्तुत हैं।

•

डिपो मसूरी की सबमे ऊँची चोटी है। देखने लायक तो वहाँ कुछ नही है, पर है वह रहने लायक जगह। शहरा मे ऐसी ताजी और महकती हवा कहा? आज हम उधर को चढ चले। थका देने वाली चढाई थी। थक गये, पर पहाडी चढाइ की थकान कि चढे भी जल्दी और उतरे भी जल्दी।

आओ कुछ देर सुस्ताएँ। प्रस्ताव किसी का हो, समर्थन सबका इसे मिला पर बैठें कहाँ ? नगरपालिका न स्थान स्थान पर सीमेंट की बेंचें डाल रखी है। किसी आते जाते न बताया—"अगल माड पर ही बेंच है और वहा का दृश्य भी सुन्दर है।" आशा धीरज की जननी है हम लोग आगे बढे। वह सामने मोड और माड के सामने ढलते सूर्य की किरणें बाग्ला की पेंटिंग बनाने मे तल्लीन, यह ब्रुश मारा और वह ब्रुश मारा ! यह बना बैल और वह मिटा घाडा !

चला बेंच पर बैठकर देखेंगे यह दृश्य और खायेंगे ताजी हवा, मन ने एक फुरेरी ली कि पिडलियो न लम्बे डग भरे। वह दीख रही है बेंच, पगडंडी स एक आर बचा, एक बड़ा-सा शिलाखण्ड और उस पर रखी लम्बी बेंच। सामने दूर दूर तक फैली विशाल पर्वतमालाएँ और ठीक नीचे हजारो फीट गहरा खड्ड हमारे जीवन की तरह, जिसमे शिव और शैतान का एक साथ निवास है। साचा नगरपालिका का इजीनियर भी सम्भवत कवि है। तभी तो क्या बढ़िया जगह चुनी है उसने बेंच रखने के लिए !

दो लम्बी कुलाचे और मैं अब बेंच के पास। मेरे दोनो हाथ बेंच की पीठ पर और मेरी खुली आँखो मे बादलो के बनते बिगडते चित्र। मैं भावना की मधुर पुलक म आनन्द विभोर हुआ जा रहा हूँ कि तभी आया हवा का एक हलका झोका और मेरी नाक पर मारा किसी न तेज चाकू। नाक तो नहीं कटी, पर दिमाग भिन्ना गया। यह चाकू खून करने वाला लोहे के फलक का चाकू न था पेशाब की तेज दुर्गंध का चाकू था। बेंच की आड का लाभ उठाकर स्वतन्त्र भारत के नागरिक नर नारियो न इस स्थान का उपयाग किया था।

कुत्ते भी स्थान देखकर ही पेशाब करते है, पर उन नर नारियो न बिना स्थान देखे ही अपनी जरूरत पूरी की थी, क्योकि इस बेंच से थाडी दूर पर ही सरकारी पेशाबघर था। मेरी इच्छा हुई कि मैं पूरे जोर स रो पड़ूं।

●

मुझे अपनी जरूरत पूरी करनी थी और सामने ही सरकारी पेशाबघर

था। मैं उधर मुडा, पर दरवाजे तक अभी पहुचा न-पहुँचा कि तेज दुर्गन्ध का एक झोका भीतर से आया। मसूरी की नगरपालिका इन दिनो सरकारी प्रबन्धक (ऐडमिनिस्ट्रेटर) के हाथो मे थी और मैं उनकी सफाई व्यवस्था का प्रशसक था, पर इस झोके की पहली ही झाक मे निन्दा का नशा मुझ पर छा गया—'जाने कब से इस पेशाबघर मे पानी की बूद नही पडी। मजा आ जाये, अगर एक रात के लिए ऐडमिनिस्ट्रेटर साहब का इसम बन्द कर दिया जाय।'

जरा आगे बढकर मैंने देखा कि भीतर पाँच मनुष्यो के लिए स्थान है और पाचो स्थाना पर पाच पढे-लिखे सज्जन खडे हैं। मैं बाहर लौटने को ही था कि देखा, दूसरे पेशाबघरो की तरह यह भी प्रवाही (फ्लश सिस्टम वाला) है और तीसर स्थान के ऊपर वह साफ़ लगी है पानी की टकी, जिसमे लटक रही है जजीर। इसमे नीचे एक छोटा कडा भी है कि उसम दो उँगली डालें और दे जरा सा झटका कि बस पाचो स्थाना मे बह जाये पानी ही पानी और दुर्गन्ध ऐसी भाग कि जैसे घरवाला के जागने पर चोर भागे।

मेरे पैर ठिठक गय। मैंने देखा, वे पाचा सज्जन रूमालो से अपनी नाक दबाये खडे हैं। क्या टकी खराब है? मेरे मन मे नया प्रश्न उपजा कि मैंने आगे बढकर कडे के द्वारा जजीर को जोर का झटका दिया। पाँचो स्थानो के नल बादल की तरह बरस पड।

वे बरसे, मैं बाहर आया। मरे पीछे ही पीछे एक दाढी वाले सज्जन बाहर आये। उनकी पतलून के पायच नीचे से भीग गय थे और बूटो मे पानी आ गया था। मुझे उन्हाने कडवी आँखो से घूरा कि इतने मे वे चारो भी भीतर से बाहर आ गय। छीटे तो सभी पर तकडे पडे थे, पर शायद दाढी वाले सज्जन दीवार से कुछ ज्यादा सटकर खडे थे, इसलिए उनकी पतलून पूरी तरह रसवर्षिणी हो गयी थी।

तमककर बोले—"क्या जी, यह आपने क्या हिमाकत की?" मैं इस समय स्वय लडने की नही तीतर लडाने की मूड मे था। मुसकराकर मैंने कहा—"हिमाकत? वह तो आपकी जान बचाने की हिकमत थी जनाब!"

गुर्राकर बोले—"जान बचाने की कैसी हिकमत?"

मैंने अपने गले को पूरी तरह ठडा कर एक तेज आलपीन चुभाया—

"आप नाक को इतनी जोर से दबा रहे थे कि मुझे आपका दम घुटने का खतरा दिखाई दिया, और भाई जी, यह तो बकरे भी जानते हैं कि दम घुटने से जान चली जाती है।"

एक दूसरे साहब बीच मे टपक पड़े—"फिर आपको जजीर ही खीचनी थी, तो धीरे से खीचते। आपने तो ऐसा झटका मारा कि जसे कोई बडी मुसीबत आ पडी हो।"

बुजुर्गाना लहजे म मैंने कहा—"हाँ जी, मैंने यही समझा कि आप बडी मुसीबत मे है।"

वे समझ गये कि इस पत्थर पर जोक नहीं लग सकती और खिसके। अपनी भीगी पतलून को एक झटका देते हुए वे सज्जन बोले—'ऐसे ऐसे जाहिल भी मसूरी आ जाते हैं।' मैंने उनकी व्यग्य कविता को सगीत के स्वर मे चढाते हुए कहा— जी हा, यही तो बात है कि ऐसे-ऐसे जाहिल भी मसूरी आ जाते हैं कि बदबू मे मरते रहते हैं, पर जजीर नही खीचते।'

दिमाग मे जोशीले लडकपन का जो उबाल आया था, वह उतर गया, तो एक हलकी उदासी मुख पर छा गयी—यो ही मैं उन बेचारो से उलझा, उनका या किन्ही दूसरो का इसमें कुछ भी दोष नही। उनसे पहले जाने कितने नागरिक आ चुके होंगे। वे सभी इस दुर्गन्ध के स्रष्टा थे, पर सभी उसके शिकार भी।

एक होता है नागरिक का अपना चरित्र और एक होता है नागरिक का राष्ट्रीय चरित्र। बेंच की आड मे पेशाब करने वाले नर-नारी, नागरिक के चरित्र की दृष्टि से और राष्ट्रीय चरित्र की दृष्टि से भी बुरे-से-बुरा नमूना थे, क्योंकि उनमे उचित स्थान देखकर जरूरत पूरी करने की नागरिक शालीनता भी नही थी और राष्ट्र के स्वच्छ-सुन्दर स्थानो को स्वच्छ-सुन्दर रखने की उदात्त राष्ट्रीय भावना का भी अभाव था।

और सरकारी पेशाबघर के वे पाच सज्जन? वे कमहीन थे, जिनमे राष्ट्र द्वारा नागरिको को प्रदत्त सुविधाओं का लाभ उठाने की भी वत्ति नही थी, राष्ट्र को अपनी ओर से सुविधा देने की तो बात ही दूर। वे दो पैर के पशु थे, जो डडे से हँकते हैं स्वय सोच विचारकर नही चलते।

प्रिन्स क्रोपाटकिन का रूस के नये इतिहास में वही स्थान है, जो भारत

के नये इतिहास मे लोकमान्य तिलक था। रूस जारशाही से मुक्त हो गया था और लेनिन महान् रूस की समाज व्यवस्था को समाजवादी रूप देने मे जुटे हुए थे। रूस के नागरिकों को नपा-तुला भोजन मिलता था और पूरे देश के दूध का पनीर बनाकर विदेशों को भेजा जाता था, जिसके बदले मे मशीनें खरीदी जाती थीं। रूस के नागरिक दूध से वंचित थे। एक दिन लेनिन प्रिंस क्रोपाटकिन से मिलने गये। उनकी कमजोरी और बुढापा देखकर लेनिन ने कहा—"मैं आपके लिए एक गाय भेजने की विशेष व्यवस्था करता हूँ।" प्रिन्स क्रोपाटकिन ने कहा—"मैं भी रूस का एक नागरिक हूँ, इसलिए मैं अपने लिए कोई विशेष व्यवस्था नही चाहता।" और कुछ दिन बाद प्रिन्स क्रोपाटकिन की मृत्यु हो गयी।

दूसरे महायुद्ध के बाद जापान मे भी राशनिंग करना पडा। सब नागरिकों को नपा-तुला अन्न मिलता था। एक रिटायर्ड जनरल की खुराक ज्यादा थी। राशनिंग मे मिलने वाला अन्न कम पडता था, वे भूखे रह जाते थे। पास-पडोसियो ने उनसे कहा कि सरकार से ज्यादा अन्न देने की प्रार्थना करें, पर उनका उत्तर था—"युद्ध के कारण देश मे अन्न की कमी है। सरकार व्यवस्था को सँभाल रही है, मैं सरकार का काम बढाना नही चाहता। दूसरे नागरिक भी बहुत सी दिक्कतें बरदाश्त कर रहे हैं। मै भी सबके साथ रहूँगा।" और रोज-रोज की भूख से धीरे धीरे उनकी मृत्यु हो गयी।

दूसरे महायुद्ध के बाद की ही बात है। इग्लैण्ड टूटा फूटा पडा था, हर चीज की कमी थी। भारत की अन्तरिम सरकार (1946 47) के मन्त्री जगजीवनराम जी किसी सम्मेलन मे लन्दन गये। वहा की सरकार ने इधर-उधर जाने-आने के लिए एक टैक्सी दी और पेट्रोल के कूपन की एक कॉपी भी। पेट्रोल पर कट्रोल था, पर इस सरकारी कूपन से कहीं भी, कितना भी लिया जा सकता था।

सम्मेलन के बाद मन्त्री जी जब भारत लौटने लगे, तो उस कॉपी मे पांच कूपन बाकी थे। टैक्सी के ड्राइवर से उन्होने कहा—'लो ये कूपन तुम ले लो, तुम्हे इनसे लाभ होगा। अपनी टैक्सी के लिए पेट्रोल ले लेना।"

मन्त्री जी का ख्याल था कि टैक्सी ड्राइवर इससे खुश होगा, उन्हे झुककर सलाम करेगा, पर वह तो सुनते ही गुस्से से भर गया—"आप

मुझे बेईमान समझते हैं ? मैं आपकी राय म गद्दार हूँ कि अपनी सरकार को धोखा देकर अपने लिए नियत भाग से अधिक पेट्रोल ल लूँगा ? आपके दश म ऐसे ही नागरिक हात हैं ? आप य कूपन अपने स्वागत-अधिकारी का लौटायें, मैं इन्हें कैसे ले सकता हूँ ?"

एक होता है नागरिक का अपना चरित्र और एक हाता है नागरिक का राष्ट्रीय चरित्र। प्रिंस क्रोपाटकिन, जापानी जनरल और इंग्लैण्ड का ड्राइवर नागरिक के अपने और राष्ट्रीय चरित्र के उत्तम नमूने हैं। इसी शृंखला मे जगजीवनराम जी का ही दूसरा सस्मरण है उसी यात्रा का। वे घुटना म दर्द के कारण नाश्ते म अण्डा लेते हैं, पर द्वितीय विश्वयुद्ध मे जर्मन बम्बार्डमेंट से इंग्लैण्ड के मुर्गीखाने क्षत विक्षत हो गये थ, लन्दन मे अडे का कहाल था, डाक्टर के लिखने पर ही किसी को अडे मिलते थे। स्वागत-अधिकारी तीन दिन प्रयत्न करने पर भी जगजीवनराम जी को अडा नही दे सका। अन्त में उसने क्षमा-याचना की, तो जगजीवनराम जी ने पूछा—'इस दुर्लभता म तो अडो पर भारी ब्लैक होता होगा ?" उत्तर मिला— हाँ, आरम्भ म एक बार हुआ था। बात यह हुई कि डाक्टर ने एक गरीब बीमार को दो दिन के लिए चार चार अडे लिखे। वह मुर्गीखाने से आठ अडे ले आया और अपने अमीर परिचित के हाथ काफी ऊँचे मूल्य पर उन्हें बेच दिया। पता चलने पर पडोसियो ने इकट्ठे होकर उसका घर घेर लिया और उसकी इतनी निन्दा की कि उसे मुहल्ला छोडकर भागना पडा, बस फिर कभी ऐसा नही हुआ।'

आँख खाल दने वाले सस्मरण है ये और इनका सन्देश है कि यदि दश म किसी किन्ही चीजो की कमी हो, तो अच्छे चरित्र के नागरिक उसे धीरज से सहते हैं सरकार को, समाज को अच्छी परिस्थितियाँ पैदा करने म सहयोग देते हैं हुल्लड मचाकर, भ्रष्टाचार फलाकर अव्यवस्था नही बढाते। यही नही, यदि कोई चरित्रहीन नागरिक अपनी सुविधा या स्वार्थ के लिए अव्यवस्था फलाने का प्रयास करता है तो राष्ट्रीय चरित्र के नागरिक सामूहिक रूप म उसका निन्दात्मक प्रतिवाद कर अव्यवस्था का असम्भव बना देते है।

राष्ट्रीय चरित्र अनुशासन से बनता है और अनुशासन की जडें

नागरिको के मन म जमती है राजदड के भय से। धम भावना या प्रशिक्षण अनुशासन को सहज बनाकर उसे नागरिका का स्वभाव-सस्कार बना देत है, इसे ही कहते है आत्मानुशासन। इस स्थिति मे दण्ड-भय की कम से कम आवश्यकता रह जाती है। बीसवी सदी के तीसर दशक की बात है। हिदू विश्वविद्यालय ने इजीनियरिंग कालेज मे वरिष्ठ प्राध्यापक श्री गा धी ने वार्षिक परीक्षा का प्रश्नपत्र तैयार किया और अपनी मेज के दराज मे रख दिया। उनके पुत्र ने, जो उसी श्रेणी का छात्र था, वह पढ लिया और अपने दो मित्र छात्रा का भी बता दिया। प्राध्यापक गा धी का कुछ पता न चला। परीक्षा का परिणाम निकला, तो बट का 85 प्रतिशत अक मिले।

वे चौके, पुत्र मे पूछा—"तुम्हार इतन नम्बर कैसे आय सच बताओ!" बेटे न बाप का रट्टा दिया—"पापा, मै रात मे एक एक बजे उठकर सुबह तक पढा हूँ!" गा धी अपन म स्पष्ट थे—"वह सब मुझे मालूम है, तुम्हार 65 प्रतिशत से अधिक नम्बर नही आ सकते, सच बताओ, नही तो भोजन नही करूँगा।" पुत्र ने स्वीकारा कि उसन प्रशपत्र दख लिया था और अपन दा साथिया का भी बताया है। प्रोफेसर गा धी ने उन साथियो के नाम नही पूछे और उसी दिन कुलपति पडित मदनमोहन मालवीय से प्राथना की कि मरे पुत्र का दो वष के लिए वे 'रस्टीकेशन' (परीक्षा देने के अधिकार म वचित) कर दें।"

मालवीय जी बहुत दयालु थे। उन्हान गा धी को समझाया—'प्रथम श्रेणी तो उसकी निश्चित थी ही फिर उसने प्रश्नपत्र को बेचा नही, अपने दा मित्रा को ही बताया। अब यह रहन दा, बालक का भविष्य गडबडा जाएगा।" गा धी का उत्तर सदा स्मरणीय था—"महाराज, मै चुप रह जाऊँगा, तो हमार विश्वविद्यालय की महिमा घटगी" और व आदेश पर हस्ताक्षर करान के बाद ही उठे। प्रोफेसर गा धी आत्मानुशासन क उत्तम उदाहरण हैं। गा धी जी अपने अहिंसात्मक युद्ध के द्वारा देश के जन मानस का इसी आत्मानुशासन का सामूहिक प्रशिक्षण दे रह थे, पर वह प्रक्रिया उनके बाद आगे नही बढी। नागरिका के लिए इसी प्रशिक्षण के निब ध-पुष्प खिले हैं अगले पन्ना मे। इन सस्मरणात्मक निब धा मे प्रचारक की हुकार नहीं, सन्मित्र की पुचकार है, जो पाठक का क धा थपथपाकर उसे

चिन्तन की राह पर ले आती है। वह सड़कों पर, स्टेशनों पर, दफ्तरों में, घरों में, कहें पूरे राष्ट्रीय जीवन में कुरूपता देखता है और संकल्प करता है—मैं इस कुरूपता से बचूंगा और दूसरे नागरिकों को भी बचाऊँगा। बस प्रगति पथ पर बढ़ने के लिए नागरिकों का कारवाँ तैयार हो जाता है। आगे का हर पन्ना उस कारवाँ के लिए हरी झंडी है।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

विकास लिमिटेड
सहारनपुर 247001

अनुक्रम

कारवाँ आगे बढ़े

(ललित निबन्ध)

मैं और मेरा घर

• •

मैं जब लिखते लिखते खिडकी से बाहर दाहिने हाथ की तरफ झांकता हूँ, तो एक ऊचा मकान दिखाई देता है। कई मजिलें है, जिनमें छोटे-बडे कमरे है, बरामदे है, स्नान-गृह हैं, शौचालय हैं। इन कमरा मे पुरुप हैं, स्त्रियाँ हैं, बालक हैं, हमेशा यहाँ रौनक रहती है। यह एक होटल है।

मैं लिखते लिखते जब अपनी खिडकी से बाये हाथ की तरफ झाँकता हूँ, तो एक ऊँचा मकान दिखाई देता है। कई मजिलें है, जिनमे छोटे-बडे कमरे हैं, बरामदे हैं, स्नान गृह हैं, शौचालय हैं। इन कमरो म पुरुप हैं, स्त्रियाँ हैं, बालक हैं, हमेशा यहाँ चहल-पहल रहती है। यह एक धमशाला है।

मैं लिखते लिखते अपनी खिडकी के पास बैठा अपन ही चारो ओर जब दखने लगता हूँ, तो देखता हूँ, यह है एक ऊँचा मकान। कई मजिलें हैं जिनमे कमरे हैं, बरामदे हैं, स्नान-गृह हैं, शौचालय हैं। इन कमरा म पुरुप हैं, स्त्रियाँ है, बालक है। यह एक घर है।

जाने कितने दिना से मैं इस खिडकी के पास बैठकर लिखता हूँ और न जाने कितनी बार इन तीनो मकानो पर मेरा ध्यान जा चुका है, पर उस दिन अचानक न जाने कहाँ स मन के आँगन मे एक सवाल उभरकर खडा हो गया। ये तीन ऊँचे मकान इट चूने की दीवारो से बन है, करीब-करीब एक ही तौर के है और इनमे वही स्त्री-पुरुप-बालक रहते है। फिर यह क्या बात है कि इनमे एक होटल है, एक धमशाला है और एक घर। तीनो मे लोग रहत हैं, खाते-पीत हैं, जीवन का आनन्द लेते है, फिर य तीना ही घर क्यो नही हैं?

आप जानते हैं, मरी आदत साचन की है, और यह आदत कोई फालतू बात नहा, यह साचना ही मरे जीवन की चरितार्थता है।

हू, सोचना ही जीवन की चरितार्थता है। यार, तुम भी फुलझड़ियाँ खूब छोडते हो। दाशनिका म सुना था कि मुक्ति ही जीवन की चरितार्थता है और कजूसा से सुना था कि धन ही जीवन की चरितार्थता है पर आज आपसे नयी बात मालूम हुई कि दाशनिक और कजूस दोना ही जीवन के जगल मे भटक रहे हैं और उसे ठीक-ठीक अब आपन समझा है। मगर भाई, एक बात है कि इस समझ का मजबूत चमडे के बटुए म जरा बन्द रखा करो। बात यह है कि अगर यू ही खुली रही और इसकी सच लाइट बाहर जरा ज्यादा फैल गयी ता आज, कल, परसा यानी एक न एक दिन देर-सवर आप हमारे देश के किसी पागलखाने की रौनक बढ़ाते नजर आयेंगे।

जी, मैं किसी दिन क्या आज ही और इसी समय, जरा खुश हो जाइए हाँ हाँ, देख क्या रहे ह, मुसकराइए साहब—मैं अपने आपको पागल मान लेता हूँ।

वाकई तुम हो बड़े भले आदमी, बड़ी जल्दी मान गये हमारी बात।

जी आपकी नहीं, संस्कृत के एक पुराने कवि की बात।

वाह-वाह यह नयी खुरपट जोरदार रही कि बात कही हमने और आप मान गये संस्कृत के एक पुराने कवि की, जो पता नहीं जीता है या मरकर कई नये जन्म भी ले चुका।

आप ठीक कहते है, जिस कवि की बात मैं अभी-अभी मान गया हूँ, वह उससे पहले ही मर गया था जब आप इस धराधाम पर उतरे।

अच्छा यह बात है, तो बताइए कि कौन-सी बात मान गये आप उस संस्कृत कवि की ?

जी, उस संस्कृत कवि ने कहा है कि जो अरसिक के सामने रस बखेरे वह पागल, यानी लोकभाषा मे, जो भैंस के आगे बीन बजाये वह बेवकूफ।

ओहो, तो हम अरसिक हैं और आपने वह कोई बहुत रस की बात कही थी। खैर साहब, गाली तो आप दे चुके और हमने सुन भी ली, पर उस रस की व्याख्या तो आप कर ही दीजिए।

व्याख्या की इसमे क्या बात है। आप जानते हैं, मैं एक पत्रकार हूँ और मेरा काम स्वय सोचना और लोगो को सोचने मे मदद देना है। एक पत्रकार के नाते मेरे जीवन की यही चरितार्थता है। आप इस मामूली और सीधी-साफ बात को सुनकर दार्शनिक और कजूसो के छौक लगाने लगे।

खैर साहब, हमारी बात छौक ही सही। आप यह बताइए कि अपनी खिड़की से उन ऊँचे मकानो को देखकर आपने क्या सोचा, यानी फिर से आप अपनी बात जारी कीजिए।

अब आप आये रगत पर, तो सुनिए। मैंने उन तीना मकानो को देखा और बार बार सोचा कि ये तीनो घर क्यो नहा है। सोचते साचते मैं समझ पाया कि इटो की दीवार से घिरे स्थान मे एक साथ बहुत से स्त्री-पुरुषो के रहने, खाने-पीने और बातचीत करने से ही घर नही बनता, क्योकि इन रहने वालो के जीवन म परस्पर कही कोई एकसूत्रता नही है और एकसूत्रता ही घर की कुजी है।

इस कुजी को जब मैंने अपने मन मे घुमाया फिराया तो मुझे लगा कि घर के दो भाग हैं—एक मैं और दूसरा मेरा घर। मैं का अर्थ है घर का एक आदमी, और मेरा घर का अर्थ है बाकी सारा घर। जहाँ एक का अनेक से आत्मीय सम्बन्ध है, जहा एक बाकी दूसरा के लिए कुछ करता है और बदले मे कुछ उनसे पाता है, जहाँ हर एक के कुछ अधिकार है और कुछ कर्त्तव्य हैं, वह घर है।

हम जिस समाज व्यवस्था मे हजारो साल से जी पल रहे हैं वहा घर हमारे विशाल जीवन का पहला घटक, पहली यूनिट है और हम उसे ठीक रख सके, तो अपने सारे जीवन को ठीक रख सकते हैं। ठीक रखने की कुजी है ठीक समझना, इसलिए यह आवश्यक है कि हम उसकी बारीकिया म उतरें।

हू, तो क्या है वे बारीकियाँ?

आपके इस प्रश्न से मुझे खुशी है, क्योकि इसका अर्थ है कि आपने मेरी ही दिशा मे सोचना आरम्भ कर दिया है। घर के बारे मे भी यही बात है कि वहाँ हर आदमी अपनी ही सोचे और अपनी ही करे, तो प्यार का, एकसूत्रता का, एकात्मकता का, एकरसता का शीराजा ही बिखरने लगता है।

तो सुनिए फिर अब। एक महत्त्वाकांक्षी मनुष्य ने कहा था कि मुझे दुनिया से बाहर एक पैर रखने का वही जगह मिल जाये, तो मैं इस दुनिया को हिला सकता हूँ। उसकी यह चाह सैकड़ों साल कागजों में लिखी पड़ी रही और तब हमारे देश के महान सन्त स्वामी रामतीर्थ ने इसका उत्तर दिया—वह जगह तुम्हारे ही भीतर है—तुम्हारी आत्मा, जहाँ खड़े होकर तुम इस दुनिया को हिला सकते हो।

यह तो हुई तत्त्वज्ञान की बात, पर इसका एक सांसारिक रूप भी है कि *हमारा जीवन एक युद्ध है एक संघर्ष है।* आज की परिस्थितियों ने इस संघर्ष को कहीं कड़वा कर दिया है और कहीं उदास, इसलिए आज हमारे लिए जीवन की समता और सन्तुलन को बनाये रखना कठिन हो गया है। पर यह न हो तब भी जीवन एक संघर्ष है और संघर्ष से बचना मनुष्य का स्वभाव है।

इस संघर्ष में फँसकर जो दो प्रश्न हमारे सामने आते हैं उनमें पहला यह है कि किसके लिए जियें और दूसरा प्रश्न यह है कि किसके दम जियें। पहले का अर्थ यह है कि हम इस संघर्ष में किसके लिए पड़ें? क्यों पड़ें? यह जीवन की दिलचस्पी का प्रश्न है। दूसरे का अर्थ है कि हम इस संघर्ष में पड़ें तो सही पर जहाँ हम थोड़े घबरायें, वहाँ कुशल पूछने वाला कौन है? यह जीवन की शक्ति का प्रश्न है। दोनों का उत्तर है—घर।

घर का काम है, जीवन में अपने प्रत्येक सदस्य को दिलचस्पी पैदा करना और उसे शक्ति देना। तो इसका अर्थ हुआ कि मेरा यह अधिकार है कि मैं घर से जीवन की दिलचस्पी और शक्ति लूँ और मेरा यह कर्त्तव्य है कि उसे *ऐसा बनाये रखूँ* कि वह जीवन को दिलचस्पी और शक्ति दे सके। असल में जीवन का सबसे बड़ा प्रश्न ही यह कर्त्तव्य और अधिकार का प्रश्न है और यही हमारी मनुष्यता की कसौटी है।

यह कैसे?

ओहो, तो जाग रहे हैं आप। मैंने तो समझा था कि बात करते-करते सो गये। आपका प्रश्न है कि कर्त्तव्य और अधिकार का प्रश्न हमारी मनुष्यता की कसौटी कैसे है?

बात यह है कि हम राक्षसों की कहानियाँ सुनते हैं, पशुओं को देखते

हैं, और मनुष्य तो ख द है ही, पर एक सचाई यह भी ह कि हम ही राक्षस हैं, हम ही पशु है, हम ही मनुष्य है।

यह किस तरह ?

यह इस तरह कि हम यह समझ ले कि ये तीनो ही भावनाएँ हैं। उदाहरण के लिए, जो जीवन मे दूसरो के प्रति अपन अधिकार ता मानता है, पर कर्त्तव्य नही, वह राक्षस है। इसका अथ हुआ कि राक्षस यह मानकर चलता है कि दूसरे मेरे लिए है, मैं दूसरा के लिए नही। जा इस तरह जीता है वह रावण का खानदानी हो या राम का, निश्चित रूप से राक्षस है।

जो जीवन मे दूसरो के प्रति न अपने अधिकार मानता ह न कत्तव्य, वह पशु है। पशु यह मानकर चलता है, जाने या अनजान कि न कोई मेरे लिए है न मैं किसी के लिए हूँ। घर ही वह निमाणशाला है जो हम राक्षस और पशु होने से बचाती है और मनुष्य बनाती है, क्याकि यहा हम दूसरो के लिए जीते है और दूसरा के बल जीत हैं। मैं क्या दू और क्या लू, इन दो प्रश्ना का समन्वय ही घर की सफलता है।

मैं प्रात काल घर से निकला था, दिन भर सघष मे रहा जो मिला उसी न कुछ माँगा, कुछ लिया। गलियो मे देने वाले कहा मिलत हैं। ये तो मागने वालो से ही भरी हैं। इन मागने वाला मे ऐसे भी ह जा चूटते हैं ऐसे भी है जा खसोटत हैं और ऐसे भी ह जो लूटते ह। ता दिनभर माग सुनना, चुटना, खसुटना और लुटना सहता हू और अब जा सूय ढलाव पर है तो मैं थकाव पर हूँ। अब न माग सुनने की शक्ति है और न लूट सहने की। मुझे आप मानसिक दिवालिया कह सकते हैं। फिर जो माग नही सुन सकता, उसे भिखारी क्यो बुलाये। जिसे चूटा या खसोटा नही जा सकता उससे उचक्का का क्या काम। जिसे लूटना नही है उस पास बुलाकर लुटेरे क्या करेंगे। तो अब बाहर गलियो मे मेरी किसी को जरूरत नही। फिर मैं कहा जाऊँ ? यह मेरे रोम रोम की पुकार है और इस पुकार का उत्तर है—घर, मैं घर जा रहा हूँ। मेरा अधिकार है कि जब इस हालत मे घर पहुँचूँ, तो हँसते होठ और प्रतीक्षा करते नेत्र पाऊँ, क्योंकि इन दोनो मे दिवालियो को फिर से समृद्ध करने की शक्ति है।

हाँ, ठीक है, घर इस शक्ति का केन्द्र है। मैं इसे मानता हूँ, पर इस

मानन के पास ही एक खतरा खडा है और वह खतरा यह कि मेरी माँग इस शक्ति को निस्सीम मानकर स्वय भी निस्सीम हो उठे। यह खतरा इसलिए है कि मेरा यह तक है कि आज इस समय घर की जो शक्ति है, वह सबक लिए है और यह सम्भव है कि वह आज इतनी न हो कि सबको सब कुछ भरपूर मिल सके और इसका पात्र के अनुसार बँटवारा करना आवश्यक है। इस दशा मे मेरा अपने भाग से अधिक लेना यह अथ रखता है कि भाइ न कोई बिना लिय रह जाय और कौन जाने वह रह जान वाला भी इसी दशा म हो जो इस समय मेरी है।

अब तक जो सोचा, जो कहा, जो कहना है, उसे मैं समेटू, तो यह हुआ कि मेरा—घर क प्रत्यक सदस्य का—यह अधिकार है कि वह घर को पूण करने मे अपनी शक्ति का अधिक से अधिक भाग दे और यह कर्तव्य है कि शक्ति का उतना ही भाग ग्रहण करे, जो घर के दूसर लोगो का उनका भाग न्यायपूवक दन के बाद अपन लिए बचे। मैं ऐसा करूँ तो इसका अथ होगा कि मैं एक मनुष्य हूँ।

इसे और भी थोडे म कहना चाहूँ, तो या कहूँगा कि घर की सफलता का सबस बडा शत्रु है यह भाव कि मैं लेने म उदार और दने मे कजूस रहू।

हमारी बोलचाल का एक शब्द है, गलतफहमी। इस ठीक समझने के लिए हमार लोक जीवन की एक कहानी सुनिए

किसी शहर मे एक सेठजी न अपने रहने के लिए एक शानदार भवन बनवाया। एक दिन सेठजी अपने छज्जे पर खडे थे कि उधर से दो किसान निकले। मकान का देखकर एक ने कहा यह मोर बहुत सुन्दर है। दूसरे ने दो उँगलियाँ उठाकर कहा मोर तो दोनो तरफ के ही अच्छे हैं। किसान की दो उँगलियाँ देखकर सेठजी को ताव आ गया और वे झपटे झपटे भीतर जाकर सठानी को दो उँगलियाँ दिखाकर बोले मैंने तो दो मोर बनवाये हैं चार हजार रुपये खच करके, पर यह किसान दोनो की कीमत दो हजार ही बताता है।

उसी दिन प्रात सेठजी ने सेठानी को चार चूडियाँ बनवा देने को कहा था। वह सठजी की दो उँगलियाँ दखकर समझी कि अब वे दो चूडियो के लिए ही तैयार है। वह गुस्से मे भरी भीतर की आर भागी और बसन

पीसती नौकरानी को दो उँगलियाँ दिखाकर बोली—अरी देख तो, अब तेरे सेठजी दो चूड़िया पर आ गये हैं।

नौकरानी ने चक्की की गूंज म बात तो सुनी नही, पर उँगलिया को देखकर समझा कि सेठानी जी कह रही है कि बारीक बेसन पीस, ये एक-एक दाने के दो-दो क्या कर रही है।

नौकरानी गुस्से मे पैर पटकती हुई मुनीम जी के पास पहुँची और दो उगलिया दिखाकर बोली—सेठानी जी का इतना बारीक बेसन भी दाने के दो टुकडे ही दिखाई देता है, तो मुझस अब काम नही होता, मेरा हिसाब कर दो।

मुनीम जी का हिसाब आज नही मिल रहा था। वे समझे कि मुझसे मजाक कर रही है, तो झल्लाकर बोले—मैं दो-दो रुपये गिनता हूँ, तो तू मुनीम हो जा। गद्दी पर बैठी सौ-सौ गिना कर।

इस तरह किसान की दो उगलिया ने सारा घर घुमा दिया और सबके हँसते चेहरे फुलाकर गोल-गप्पे-से बना दिये। अब हर एक-दूसरे से नाराज और आप से बाहर, यह है गलतफहमी। मेरा अधिकार है कि मैं चाहूँ कि मेरे बारे मे किसी को भी घर म गलतफहमी न हो और मेरा कर्त्तव्य है कि यदि किसी तरह घर मे कही किसी को गलतफहमी हो ही जाये, तो उसकी गाँठ को सरलता से सुलझा दिया जाये।

इस सुलझाने की भी एक कला है और इस कला का पहला और सर्वोत्तम पाठ है शान्त रहना। इसे जरा समझ लीजिए कि शान्त रहने का क्या अर्थ है। जिसके बारे मे गलतफहमी है वह जब इसे दूर करने को उठे, तो यह निश्चय कर ले कि कोई कुछ कहे वह शान्त रहेगा। मैं इस बात पर इसलिए जोर दे रहा हूँ कि गलतफहमी की सबसे मुख्य बात यह है कि जब किसी को एक बार यह हो जाती है तो वह फिर इसे दूर करना नही चाहता और जब हम उसे दूर करने की कोशिश करते हैं, तो वह इसे हमारी एक नयी धुरपट समझता है। हमारी कोशिश उसे गरम कर देती है, गरमी कडवाहट की माँ है और कडवाहट का पुत्र है ताना। ताना सुनकर भड़क उठना मामूली बात है, पर भडके कि गलतफहमी दुश्मनी हुई और बस चौपट। इसलिए गलतफहमी को दूर करने की कला का सर्वोत्तम पाठ है—स्वयं

शान्त रहना।

वाह भाई यह तो आज तुमने बहुत गहरी बात बतायी हमे।

जी, गहरी नही, यह तो मामूली बात है। इसकी गहराई तो यह है कि कभी कभी गलतफहमी का आधार इतना सूक्ष्म होता है कि हम ईमानदारी से कोशिश करने के बाद भी यह नही जान पाते कि वह आरम्भ कहाँ से हुई।

मैं जानता हूँ कि मेरी यह बात जल्दी से आपकी समझ मे नही आएगी, तो लीजिए एक उदाहरण की रोशनी उस पर डालता हूँ

मैं प्रात नौ बजे घर से भोजन कर, अपने काम पर गया था और अब साढे पाच बजे घर लौटा हूँ। इन साढे आठ घण्टो म एक मिनिट को भी कुरसी कमर से नही लगी। मेज पर इतनी फाइलें थी कि कमर झुकाये उन पर झुका रहा। बीच मे कई बार अपने अफसर के पास जाना पड़ा। वे आज जाने क्यो, सारे दिन गरम रहे। दो बार तो उनका रवैया ऐसा हो गया कि जी मे आया फाइलें पटककर घर चला जाऊँ, पर पन्द्रह साल की सर्विस और बाल-बच्चो का साथ है बिना पलक झपकाये काम पर लगा रहा और साहब के उठने के बाद भी एक घण्टा काम कर अब घर आया हूँ, पर आकर अभी बूट खोलकर पलँग पर लेटा ही था कि श्रीमती जी बोली—लो चाय पी लो और चलो फिर जरा नुमाइश घूम आयें। मैंने अपनी असमर्थता बतायी तो वे पैर पटकती और बडबडाती भीतर चली गयी। अब बताइए, इसमे मेरा क्या कसूर है कि म यह सोच रहा हूँ कि घर म सब मास नोचने वाले गीध है, कोई मेरा हमदर्द नही।

बात सुनकर सच मालूम होती है और मन मे आता है कि वाकई श्रीमती जी एकदम हृदयहीन है पर उनकी बात सुनना भी आवश्यक है। वे कहती हैं—आज सुबह चार बजे उठी थी। उठकर निमटी, गाय की सानी की, कुट्टी काटी, दूध निकाला सबको चाय पिलाई, खाना बनाया, खिलाया बच्चो को सवारकर स्कूल भेजा, बाबूजी को कपडे बदलवाये, दफ्तर भेजा, तब कही दो रोटियां पेट म पडी। इसके बाद गेहूँ चुगे, कपडे समेटकर रखे, धोबी आ गया तो उससे कपडे लिये, सबके बटन देखे, मरम्मत की, घर का सामान मँगाया, बच्चे स्कूल से आ गये उन्हे खाना दिया कमरे

ठीक किये, तब बाबूजी आये, उन्हें कपडे बदलवाये, चाय दी, शाम का खाना चढाया और सब्जियाँ बना दी कि आकर पराठे बनाऊँगी, तब जरा नुमाइश चलने को कहा तो बाबूजी आपे से बाहर हो गये। हम सारे दिन सबके लिए मरते है फिर भी पाँच मिनिट को हमारा कोई मन रखने वाला नही है। घर क्या है, जेल है। ऐसे घर से तो कही जगल मे जा पडें वह अच्छा है।

बात सुनकर सच मालूम पडती है और मन शान्त हो तो समझ मे आता है कि दोनो का कसूर नही है, पर सचाई यहाँ इतनी सूक्ष्म है कि उसे दोना ही नही पकड पाये और महाभारत मच गया। इसलिए मैं कहता हूँ कि गलतफहमी को दूर करने के लिए शान्त रहना जरूरी है और शान्ति की कुजी बस यही है कि हम घर मे जहाँ अपने अधिकार चाहते हैं, अपने कर्त्तव्य भी जानें और दोना को मिलाकर जीवन मे चलें।

घर जीवन के सुख का पॉवर-हाउस है और सुख है साधना का फल। इस साधना मे दे भी है और ले भी। दे देवत्व है, ले राक्षसत्व और दे-ले मनुष्यत्व। जहाँ बैठकर हम जीवन को इस दे-ले का समन्वय करना सीखते है, उसी प्रयोगशाला का नाम घर है, जो इस समन्वय के खराब होते ही नरककुण्ड बन जाता है।

मै और मेरा पडोस

• •

संस्कृति और सभ्यता हमारे निजी और सामाजिक जीवन के महत्त्व-पूर्ण अग है। सस्कृति हमे राह बताती है तो सभ्यता हमे उस राह पर चलाती है। सस्कृति न हो तो मनुष्य और पशु के विचारों मे कोई भेद न रहे और सभ्यता न हो तो मनुष्य और पशु का रहन-सहन एक-सा हो जाये। यही कारण है कि समाज के कर्णधार हमेशा सस्कृति और सभ्यता की रक्षा के लिए जोर देते रहे हैं।

सस्कृति की पाठशाला है घर और सभ्यता की पाठशाला है पडोस। यो कहकर हम सचाई के और साफ नजदीक आ जायेंगे कि सभ्यता की पहली सीढी है—पडोस।

आइए पास-पडोस पर ही बातचीत करें आज।

तो क्या साहब सस्कृति के साथ पडोस का कोई सम्बन्ध नही ?

बहुत बढिया और मौके का प्रश्न पूछा है आपने। सभ्यता सस्कृति की प्रयोगशाला है। हम अपने मन के भीतरवाली तह मे जो सोचते हैं, जिस तरह सोचते हैं वह है सस्कृति और उसे जहाँ और जिस तरह अमल मे लाते हैं, वह है सभ्यता। सभ्यता का मोटा अर्थ है, सभ्य लोगो के रहने-सहने, मिलने जुलने, बात-व्यवहार करने का ढग। सभ्य एक सास्कृतिक शब्द है और वहाँ इसका अर्थ है—सभाया साधु सभ्य —जो चार आदमियो मे समाज मे सभा मे, भला है वह सभ्य है। सक्षेप मे व्यक्ति और समाज के सम्बन्धो को जोडने वाली पद्धति, कला और तरीके का नाम सभ्यता है और क्योकि मनुष्य पहले-पहल घर से बाहर निकलकर अपने पास पडोस मे ही मिलता-जुलता है इसलिए मैं कह रहा हूँ कि सभ्यता की पाठशाला है

पडोस और सभ्यता की पहली सीढी है पडोस।

क्यो जी, जो सभा मे, समाज मे, चार जना म भला है, वह है सभ्य, पर जो अपने घर मे भला है वह क्या है ?

आज तो आप पूरी गहराइयो मे उतर रहे है और ऐसे प्रश्न पूछ रहे हैं कि बातचीत अपने आप खिलती चली जाये।

ठीक है, जो सभा मे, समाज म, चार जनो मे भला है, वह सभ्य है, पर जो अपने घर मे सभ्य है, वह सस्कृत है—आज की चलती भाषा मे कल्चड।

क्या यह सम्भव है कि कोई आदमी सभ्य तो हो पर सस्कृत न हो ?

बहुत बढिया प्रश्न है आपका। वाह वाह, क्या यह सम्भव है कि कोई आदमी सभ्य तो हो पर सस्कृत न हो ?

हा, मैं कह रहा हू कि यह सम्भव है। सुनने मे अजीब-सा लगता है, पर यह सम्भव है। मेरे मित्र है। जहा बठते है, स्त्री और पुरुष की समानता पर बहस करते है, जलसो मे इस विषय पर भाषण देते हैं, पत्रो मे लेख लिखत है, पर अपनी स्त्री के साथ एसा व्यवहार करते है कि रावण भी देखकर शरमा जाये। कई आदमियो को मैं जानता हूँ, जो एक-दूसरे के जानी दुश्मन है, पर मिलते हैं तो मीठी मीठी बाते करते हैं।

इसका साफ अथ ह कि ये लोग असस्कृत होकर भी सभ्यता का दामन थामे हुए हैं। आप यहा कोई नया प्रश्न न पूछ बैठें, इसलिए मैं अपनी ओर से ही कह देता हूँ कि सस्कृतिहीन सभ्यता जीवन की विडम्बना है—यह धूर्तता है और इस तरह अब तक हमने जो कुछ कहा है वह सक्षेप मे यह कि जो घर मे घर के लिए, भला नही है वह पडोस के लिए भी भला नही हो सकता।

बातचीत का मजा उसकी दिलचस्पी म है, पर आज आपके प्रश्ना ने उसे गम्भीर कर दिया है, तो यह उचित होगा कि उसे उभारने से पहले यही गहराई का एक गोता और ले ले।

मनुष्य की सबसे बडी उन्नति है—ईश्वर हो जाना, और सबसे गहरा पतन है—अपने को पाँच हाथ की देह मे सीमित मान लेना। पहला परमाथ है, दूसरा स्वाथ। मनुष्य का काय है स्वाथ से परमाथ की ओर बढना और

इसका पहला पडाव है पडोस—जहाँ मनुष्य अपने शुभ-अशुभ और सुख दुख की चिन्ता करता है। पडोस म आग लगती है, तो उसका छप्पर भी फुकता है, पडोस म यज्ञ होता है, तो उसके घर भी सुगन्ध फैलती है और यो वह सोचता है कि मैं इनके साथ ही बँधा हू—हम सब एक ही नाव के यात्री हैं।

बस एक बात और कि इस दुनिया म हर आदमी का चेहरा अलग ढग का है, आवाज अलग ढग की है और स्वभाव अलग ढग का है, तो क्या दुनिया का हर आदमी एक अलग इकाई है और ससार की एकता या मानव जाति की एकता का कोई अथ नही है? हम इस प्रश्न पर हाँ कह सकें तो फिर जीवन की सब उच्च भावनाएँ ही निरथक हो जायें। मानव जीवन की सबसे बडी विशेषता मानवमात्र की एकता है और इसलिए अनेकता म एकता के दशन को हमारे जीवन-दशन मे जीवन की महान् सम्पदा कहा गया है। मैं आपसे जो कुछ कह रहा हूँ, वह बस यही कि पडोस अनेकता म एकता के दशन का पहला पडाव है, क्योकि घर म हम जिनके साथ रहते हैं वे हमारे साथ ऐसे सम्बन्धो मे बँधे हुए हैं कि हम चाह न चाह, हम उनम बँधकर ही रहना है, पर पडोस के सम्बन्धा म ऐसा कोई बन्धन नही है फिर भी हम उसकी अनेकता मे एकता के फूल खिलाते हैं। इस यात्रा का अथ है —वसुधैव कुटुम्बकम, यानी सारी दुनिया मेरा कुनबा।

अभी आपने कहा है कि पडोस के सम्बन्धा म कोई ऐसा बन्धन नही है कि हम उसे तोड न सकें फिर भी उसमे बँधकर रहना चाहते हैं तो इसका कारण क्या है? दूसरे शब्दो मे प्रश्न यह है कि मनुष्य की पडोस-वृत्ति का आधार क्या है?

सच यह है कि बातचीत का आनन्द आप ही जसे आदमियो के साथ है। आपके प्रश्ना के प्रकाश मे बातचीत खिलती चली जाती है। आज की बातचीत गहराई म उतरी जा रही थी कि आपने उसे एक नया उभार दे दिया।

हाँ, तो आप पूछ रहे हैं कि मनुष्य की पडोस-वृत्ति का आधार क्या है? बात यह है कि मनुष्य एक सामाजिक जीव है। वह अकेला नही बहुतो मे मिलकर रहना चाहता है। उसके घर के बाद उसके सबसे पास है उसका

पडोस, और यह पास होना ही पडोस वत्ति का आधार है। लोकजीवन मे कहा जाता है कि सगा दूर पडोसी नेडे। मतलब यह है कि सगे रिश्तेदार तो दूर रहते हैं पर पडोसी नडे है पास ही है। वे हर समय हमारे सुख दुख मे भागीदार हो सकते हैं और हर समय की यह सुलभता ही पडोस वत्ति का प्राण है। एक नागरिक के रूप मे हमारा अधिकार है कि हम पडोस की समीपता का लाभ लें और हमारा कत्तव्य है कि हम अपनी समीपता का उसे लाभ दे।

समीपता एक दुधारी तलवार है। समीप रहने वाला लाभ पहुँचाता है, तो नुकसान भी पहुँचा सकता है। लोकजीवन मे एक पडोसिन की गाथा इस प्रकार घर-घर कही जाती है कि—

आ, पडासिन लडें।

लडे, मेरी जूती।

जूती मार खसम के।

इसे जरा समझ लीजिए। एक पडोसिन लडाका है, बात-बेबात लडाई चलाती है। लडाई के बिना उसको खाना ही हज्म नही होता। कई दिन से बेचारी परशान है कि कोई लडने वाला ही नही मिला। अचानक किसी पडोसिन को उधर से जाती देख उसने कहा, आ पडोसिन लडें।

वह भली पडोसिन अपन काम से जा रही थी। बिना बात की लडाई मोल लेने से इनकार करते हुए उसने कहा कि लडे मेरी जूती, पर लडाका पडासिन इतनी जल्दी वह चास खोने वाली नही थी, तुरन्त पलटा देकर बोली, जूती मार खसम के।

यह वार ऐसा नही कि इसे भली पडोसिन यू ही अनजाना कर दे और इसका मतलब हुआ कि लडाई बज गयी और जमकर बज गयी इसीलिए तो लोकजीवन मे कहा जाता है कि बात का और मट्ठे का बढाना भी कोई काम है। एक ताने से बात बढकर तकरार हो जाती है और लोटा भर पानी डालने से मट्ठा मनचाहा हो जाता है। गर्ज यह है कि इन दोनो मे विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नही होती। जूती मार अपने खसम के, किसका दम है जो इस चैलेंज को नामजूर कर सके।

लोकजीवन के कोष मे लडाका पडोसिन की ही बात सुरक्षित हो सो

बात नहीं। वहां एक चतुर पडोसिन का जीवन भी सुरक्षित है। लीजिए उसे भी पढ लीजिए—

आ, पडोसिन पूडे पो लें।
क्या लग जागा तेरा।
आग, फूस, कडौती मेरी।
गुड, घी मैंदा तेरा।

इसे भी जरा समझ लीजिए। बरसात का गदराया मौसम, तीसर पहर का समय। खाने को मीठे पूडे-मिलें तो मजा आ जाये, पर आ कैसे जाय —घर का सामान ता है ही नहीं। ठीक है पर सामान को देखकर लप लपाय तो जीभ ही क्या! और घर का सामान लगाकर पूडे खा ले, तो इसमे चतुराई क्या हुई।

श्रीमती जी अब अपनी छत पर हैं और दूसरी पडोसिन से कह रही हैं —आ पडोसिन पूडे पा ल। पो ल म साये का साफ निमन्त्रण है, पर उसे सुन-समझकर भी पडोसिन मे उत्साह उभरता दिखाई नहीं देता, तो चतुर पडोसिन स्वर को ऊचा कर अपने निमन्त्रण को आकर्षक बनाती है— क्या लग जागा तेरा—अरी बावली, पूडे मे तेरा खर्च ही क्या है।

पूडो मे अपने हिस्से की घोषणा करते हुए, वह पूरे जोर और उत्साह मे कहती है—आग, फूस, कडौती (काष्ठोत्तरी छैपटी) मेरी और, तब स्वर का एकदम धीमा कर उसका हिस्सा बताती है—गुड, घी, मैदा तेरा। साफ बात है—तीन चीजें तेरी, तीन चीजें मेरी, महनत दोनों की और पूडे आधे-आध। कहीं घाटा नहीं है खतरा नहीं है। आ पूडो की दावत उडाकर इस मौसम का मजा लूटें।

प्रस्ताव दिलचस्प है, समय के अनुकूल है, उसका विवेचन युक्तियुक्त है, सारगर्भित है लाभदायक है फिर भी पडोसिन पूडो की दावत के लिए तयार न हो, तो चतुर पडोसिन क्या करे।

इस तरह की तेज और चतुर पडोसिन और पडोसी सब जगह सुलभ हैं। प्रश्न यह है कि इनका उपाय क्या हो—इनसे साथ कैसे बरता जाये?

प्रश्न उपयोगी है और लोकजीवन मे ही इसका उत्तर भी दिया हुआ है—ऐन न मान, तो सैन चलाइए। सैन न मानें तो बैन हिलाइए। बैन न

माने, तो दूर भगाइए।

वाह, यह तो आपने कविता ही पढ दी! पर इसका मतलब क्या है?

इसका मतलब बहुत साफ है कि कोई मित्र, पडोसी या बधु यदि ऐन को—अवसर को—स्वय न समझे तो उसे सैन से—इशारे से—समझा दीजिए, इशारे को भी वह न समझे, तो बैन से—वाणी से—कहकर समझा दीजिए और तब भी न माने, तो दूर भगाइए—उससे किनाराकशी कीजिए, उसे मुह न लगाइए। कुछ सफ़ाई की अभी भी जरूरत हो तो यू कहूँगा कि आप इस तरह रहिए कि पडोस मे आपका व्यवहार सबके साथ सरलता का रहे और कोई दूसरा भी आपको अपनी धूतता या मूखता का शिकार न बना सके।

आप कितना ही बचायें, सावधान रहें, पर भाई जहा दो बरतन है, वे तो खटकेंगे ही। यह ठीक कहते हैं आप और मैं माने लेता हू कि पास-पडोस मे आज नही तो कल लडाई हो जाना सम्भव क्या स्वाभाविक है।

फिर? फिर क्या! जरूरत इस बात की है कि हम आप लडाई का व्याकरण समझ ल, क्योंकि व्याकरण के साथ लडी गयी लडाई मे दोनो पक्ष खतरे से बचे रहते है।

तो आपकी राय मे लडाई का भी कोई व्याकरण होता है—वाह साहब, आप भी खूब छौक लगाते हैं।

जी, न यह छौक है, न मसाला। लडाई का व्याकरण जीवन का गम्भीर मसला है और जो लडाई का व्याकरण जाने बिना लडाई आरम्भ करते है, वे उन अधकचरे वैद्यो की तरह है, जो चीर-फाड जाने बिना आपरेशन शुरू कर देत है।

तो भाई, हमे भी बताओ यह व्याकरण।

वही तो बता रहा हू आपको। इस व्याकरण का पहला सूत्र है—तीन कोनो मे लडा, चौथा खाली रखो।

क्या मतलब इसका?

मतलब यह कि लडाई स्थायी नहीं, जीवन का अस्थायी तत्व है—कल, परसो, परले दिन लडाई खत्म जरूर होगी, इसलिए चाहे जितने जोर से लडो, पर फैसले की गुजाइश हमेशा रखो। क्या याद करेंगे आप भी कि

कोई बतान वाला मिला था—तो तुम्हे यह चौथा कोना दिखाय देता है। यह कोना है कडवे बोल का। लडाई से पहले या उसके बीच म कभी कोई ऐसा बोल न बोलिए जो फ़ैसले के समय रुकावट बनकर बीच म खडा हो। इस सूत्र का ज्ञान सबसे पहले एक ब्राह्मणी को हुआ था, जिसकी गाथा आज भी लोकजीवन म सुरक्षित है।

एक कसाइन और ब्राह्मणी पास-पास रहती थी। एक दिन कसाइन ने कहा—आ ब्राह्मणी लडें। ब्राह्मणी ने कहा—आ, तेरा जी उमड रहा है तो लडाई लड ले, पर एक शर्त है कि कहनी कहेगे, अनकहनी नही।

बस गाँठ बाँध लीजिए कि लडाई चाहे जितनी हो अनकहनी कभी न कहेगे और फिर आप देखेंगे कि हर लडाई के अन्त में आप जीत रहेंगे।

पडोस की लडाई का दूसरा सूत्र है यह कि लडाई के बीच म आपका विरोधी किसी दूसर सकट मे फँस जाये, तो लडाई रोकने मे पहल आप करें और उस सकट से बचने मे मदद करने के लिए बिना बुलाये उसके पास चले जाय। यह सुनन म शायद आपको ठीक न लगे और आप सोचें कि वाह, असली चोट करन का समय तो यही है, पर ना, यह अनुभूत मन्त्र है। आप इसे एक बार करके देखें कि स्वर्ग के फूल आपके चारो ओर बरसते हैं या नही।

तीसरा सूत्र यह है कि तीसरे मे कोई मतलब नही। जिससे लडाई है उसम लडिए पर उसके घर के दूसरे आदमियो से शत्रुता न बाँधिए। राम सिंह से लडाई जारी है, रहने दीजिए, पर उसकी पत्नी का मोटर-बस खराब हो जाने से रास्ते मे परेशान खडी देखकर अपनी मोटर रोक लीजिए और उस पूर सम्मान के साथ उसके घर पहुँचाने में जरा भी कोताही न कीजिए। रामसिंह की गाय यदि भूल से खुल गयी है, तो उसे भगाइए मत, बल्कि पकडकर घर के भीतर पहुँचा दीजिए और आवाज देकर कह दीजिए कि कोई गाय बाँध दे। रात मे यदि आप देखें कि एक चोर रामसिंह के मकान म घुस रहा ह तो पल भर भी खराब किये बिना चिल्ला पडिए और यदि आप चाह रहे हो कि लडाइ खत्म हो जाये, तो किसी बिचौलिये को बीच मे न डालिए और सीधे उसके पास चले जाइए।

लडाइ का व्याकरण बहुत विस्तृत है, पर आप ये तीन सूत्र ही याद

रख ले, तो पडोस मे कभी लज्जित होने का अवसर न आये। यो समझिए कि आपका अधिकार है कि लडाई सिर पर आ पडे, कोई लडाई की बात ही हो, तो लडें, पर आपका कर्तव्य है कि ऐसे काम न करे, जिससे खत्म होने के बदले लडाई बढती ही जाये और सर्वनाश का रूप ले ले।

ऐसे उपाय क्या है कि पास-पडोस मे हमेशा मिठास बनी रहे और लडाई की गाँठ ही पैदा न हो?

बडे काम का प्रश्न पूछा है। ऐसे उपाय तो बहुत है, पर उनमे दो आपको आज बता रहा हूँ। पहला उपाय यह है कि बोझ न बनिए। पडोसियो से मिलिए जुलिए, पर उनकी परिस्थितियो और रुचियो का हमेशा ध्यान रखिए। हर आदमी अपने ढग पर जीना चाहता है, आप उस ढग मे गडबड करेंगे, तो लडाई की भूमिका तैयार होगी। ला० सीताराम नही चाहते कि उनकी लडकिया किसी के साथ सिनेमा जाये। बलदेवसिंह की पुस्तक कोई लेता है, तो उन्हे बुरा लगता है। मि० तालिब रसूल रात मे साढे आठ बजे सोने के लिए चले जाना पसन्द करते है। बेन्सन साहब के कमरे की चीजो को कोई इधर-उधर करता है, तो बुरा मानते है। भण्डारीजी काग्रेस के खिलाफ एक भी शब्द सुनते ही भडक उठते है और हिम्मतसिंह जी काग्रेस की तारीफ मे एक भी शब्द सुनते ही गुर्रा पडते है।

अब अगर आप सीताराम जी की लडकियो को सिनेमा ले जाएँगे, बलदेवसिंह से पुस्तक माँगेंगे, रसूल साहब के पास नौ बजे तक जमे रहेंगे, बेन्सन साहब के कमरे की चीजें छूएँगे, भण्डारी जी से काग्रेस की निन्दा करेंगे और हिम्मतसिंह से काग्रेस की तारीफ करेंगे, तो उन पर बोझ हो जाएँगे और याद रखिए कि बोझ को कोई गले नही डालना चाहता, उसे उतार फेंकने की बेचैनी हरेक को होती है।

दूसरा उपाय है—पडोसियो की कमियो के साथ आप समझौता कीजिए। हर आदमी मे कुछ कमिया है यह जितनी जल्दी हम समझ लें ठीक है। हमारी कमियो को दूसरे सहते है और हमे दूसरो की कमियाँ सहकर चलना है। जान लीजिए कि आपके किस पडोसी मे क्या कमी है और मान लीजिए कि उस कमी की जगह छोडकर आपको उनसे मिलना है। बस फिर देखिए कि इनके यहाँ भी आपकी पूछ है और उनके यहाँ

भी। समय लीजिए कि आपको यह अधिकार है कि आप अपने दरवाजे खुले रखें पर आपका कर्त्तव्य है कि आप दूसरों के दरवाजों में न झांकें।

गांधी जी से किसी ने पूछा—हमारी स्वतन्त्रता की सीमा कहाँ पर है बापू ?

उत्तर मिला—जहाँ से तुम्हारे पड़ोस की स्वतन्त्रता आरम्भ होती है।

गांधी जी ने पड़ोस शास्त्र का सार इस एक ही उत्तर में भर दिया है।

अच्छा यह बताइए कि अच्छे पड़ोस की कसौटी क्या है ?

लीजिए, आप यह कसौटी भी लीजिए। यह कसौटी है—अपनी जिम्मेदारी। आपकी गली में एक बल्ब लगा है जो आपको रोशनी देता है। रात वह फ्यूज हो गया तो सबने ठोकरें खायी। दूसरे दिन शाम को बाबू अमीर सिंह दफ्तर से लौटे तो बाजार से बल्ब लेकर, पर गली में पहुँचे तो देखते हैं कि सीढ़ी पर चढ़े लाला चन्द्रभान पहले ही नया बल्ब लगा रहे हैं। यह एक अच्छा पड़ोस है, क्योंकि यहाँ हरेक अपनी जिम्मेदारी महसूस करता है। बाबू अमीरसिंह सोचते कि लाला चन्द्रभान बल्ब लायेंगे और चन्द्रभान सोचते कि मैं ही क्या अकेला रोशनी लेता हूँ, तो पड़ोस बुरा हो जाता। पड़ोसियों की राह न देखिए और अपनी जिम्मेदारी पूरी कीजिए।

अच्छा, बस एक प्रश्न और कि पड़ोस की आत्मा क्या है ?

ठीक है यह प्रश्न इस बात को पूर्ण कर देगा। पड़ोस की आत्मा है—भरोसा। क्या आपको भरोसा है कि कहीं कैसा भी संकट हो, आपके पड़ोसी आपका साथ देंगे और क्या आपके पड़ोसियों का यह भरोसा है कि कुछ भी हो पुकारते ही आप उनके पास जा कूदेंगे। हाँ, तो बस ठीक है। दोनों तरफ का यह भरोसा ही पड़ोस की आत्मा है। यह नहीं है, तो वह पड़ोस नहीं, चमगादड़ों का जमघट है।

और लो चलते चलते बिना पूछे ही आपको एक बात और बताता हूँ—आप में लाख बुराइयाँ हों उनकी छाया कभी अपने पड़ोस पर न पड़ने दीजिए। याद रखिए, चोर और डाकू भी कभी अपने पड़ोस में हाथ नहीं डालते।

मै और मेरा नगर

• •

मैं जहाँ जनमा, वह मेरा घर था और जहाँ मैं पलकर बडा हुआ, वह मेरा पडोस था। अपने घर को मैंने अपनी किलकारिया के आनन्द से भरा और उसने मुझे अपने पैरो पर खडे होने की शक्ति दी। अपने पडोस को मैंने अपनी खेल खिलन्दरियो के रस से सोचा और उसने मुझे खुली दुनिया म अपने भरोसे आप आगे बढने का बल दिया।

और अब जो अपने घर और पडोस से पायी शक्ति के सहारे विशाल ससार की यात्रा के लिए निकला हूँ, तो मैं अपने को अपने नगर मे पाता हूँ।

यह मेरा नगर है, जब मैं यह कहता हूँ, तो सोचता हूँ कि क्या मेरे हृदय मे यह कहते समय वैसी ही आत्मीयता—अपनापन—और आनन्द उमडते हैं जैसा यह कहते समय उमडा करते हैं कि यह मेरा घर है। मेरे घर म जो दूसरे लोग रहते हैं, वे मुझे लगता है कि मेरे ही अग है। मेरे इस प्रश्न का यही तो भाव है कि क्या इस घर की तरह, मै इस नगर क निवासियो को भी अपने ही जीवन का अग मानता हूँ।

मेरे मन मे यह प्रश्न तब भी उठा था, जब मैं अपने घर का द्वार लाघ कर अपने पडोस मे आया था, पर मैं सोच रहा हूँ कि प्रश्न की भाषा के दोनो बार एक रहते हुए भी दोनो के वजन मे बहुत बडा अन्तर है, और अन्तर यह है कि पडोस में जो लोग रहते हैं मैं उन्हें देखते देखते ही बडा हुआ हू और वे सब मेरे लिए अपने घर के लोगो की तरह ही निकट रह हैं, इसलिए उनके सम्ब ध मे मेरे मन की दशा यह है कि न तो मुझे वे अपने लिए नया मानते हैं और न वे ही मेरे लिए नये हैं।

इसके विरुद्ध पडोस का क्षेत्र छोटा-सा है और नगर का बडा, तो मैं

जब अपने से पूछ रहा हूँ कि क्या मेरे हृदय म यह कहते समय भी कि यह नगर मेरा है, वैसी ही आत्मीयता—अपनापन—और आनन्द उमडता है, जैसा यह कहते समय उमडा करता है कि यह मेरा घर है, तो यह अनेक प्रकार क दूर दूर बसे जान आर अनजान उन लोगा के साथ मेरी आत्मीयता आत्मलीनता मानसिक एकता और सुख दुख की साझेदारी का प्रश्न होता है।

सम्भव है मेरा नगर कई सौ आदमियो का एक गाव ही हो या कई लाख का विशाल नगर, पर वह मेरे देश की हर हालत म एक इकाई है और विशाल विश्व की यात्रा के लिए, मैं जो निकला हूँ तो यह यात्रा सफल होगी या असफल आनन्ददायक होगी या नीरस, यह सब इस बात पर निभर है कि अपन नगर के साथ रहना मैंने ठीक-ठीक जान लिया है या नही।

तो यह कसे मालूम हो कि अमुक आदमी न अपन नगर के साथ ठीक-ठीक रहना जान लिया है या नही ?

बडे मौके का और सूझबूझ का प्रश्न पूछा है यह आपन और मैं आपको एक बात बता दू कि इतनी दर स जो प्रश्न मुझे अपने म उलझाये लिये चल रहा है, उसी म आपक प्रश्न का उत्तर है। वह यह कि यदि अपन नगर के मनुष्यो के साथ मेरा वैसा ही प्रेम है, वसी ही आत्मीयता है, जैसी कि अपन घर वाला क साथ, तो बस मैं अपने नगर के साथ ठीक ठीक रहना जान गया हूँ।

आदमी अपन घर के सम्मान को अपना ही सम्मान मानता है। आप यदि आदमी से कह कि मैं कल तुम्हारे घर आऊँगा और तुम्हारे सब घर वाला को गालियाँ दूगा, पर तुम निश्चिन्त रहो, मैं तुम्हारे लिए फूलो के सुदर हार लाऊँगा, तो क्या वह इस सम्मान को अपना सम्मान मान कर इसे स्वीकार कर सकता है? हरगिज नही पर क्यो? क्योकि उसका और उसके घर का सम्मान एक ही है।

हमारे देश का एक परिवार जापान गया। वहाँ एक दिन रात म वह सिनमा देखकर अपने स्थान पर लौट रहा था कि राह भूलकर जगल की तरफ चला गया। उधर से एक युवक साइकिल पर आ रहा था। वह इन

लागो को खड़े देखकर रुक गया और उसने इन लोगो से पूछा कि क्या मैं आपकी कोई सेवा कर सकता हूँ।

जब इन लोगो ने अपने स्थान तक पहुँचने की बात कही, तो उसने कहा—मोटर का अड्डा यहाँ से एक मील है। मैं अभी आपके लिए टैक्सी ला रहा हूँ और वह चला गया, पर थोडी देर बाद ही उधर से एक टैक्सी गुजरी तो इन लोगो ने उसे रोक लिया और ये लोग इसमे बैठ ही रहे थे कि इतने मे वह युवक एक दूसरी टैक्सी लेकर आ गया। अब एक झमेला खडा हो गया कि ये लोग किस टैक्सी मे जायें ?

पहली टैक्सी वाले ने इन लोगो से प्रार्थना की कि आप लोग दूसरी टैक्सी मे बैठें, क्योकि वह आपके लिए ही अपना नम्बर छोडकर आया है।

दूसरी टैक्सी वाले ने इन लोगो से प्रार्थना की—वे उस पहली टैक्सी मे ही जायें क्योकि उसमे परिवार के कुछ आदमी बैठ गये है और उन्हे उतारना अभद्रता है।

वे लोग इस बात पर तैयार हो गये कि दोनो को किराया दे देंगे, पर बिना काम किये किराया लेने को कोई भी तयार नही हुआ और अन्त मे उस दूसरी टैक्सी मे ही उन्हें जाना पडा। उन्होंने उन सब लोगो को धन्यवाद दिया और उनका आभार माना तो उन्होंने कहा, जी नही हमारा तो यह कर्त्तव्य ही है कि आपकी सेवा करें, क्योकि आप आज हमारे नगर के अतिथि हैं, मेहमान हैं।

तो क्या बात हुई यह ? यही बात हुई कि उन सब लोगो ने अपने नगर के साथ वही भाव अनुभव किया, जो हम अपने घर के साथ करते हैं। यानी उन्होंने अपने नगर के मेहमानो को अपना ही मेहमान अनुभव किया। मतलब यह कि मेरा अधिकार है कि मैं जिस किसी नगर मे भी जाऊँ सब तरह के सकटो मे सहायता ले सकू और मेरा कर्त्तव्य है कि मेरे नगर मे रह रहा या बाहर से आया हुआ जो भी कोई हो वह अपने किसी भी सकट मे नि सकोच भाव से मेरी सहायता और सहयोग ले सके।

नगर विशाल है और मैं उसका एक छोटा-सा अग हूँ, पर मेरी छोटी-सी भूल इस विशाल नगर को सकट मे डाल सकती है और सकट भी ऐसा कि हजारो प्राण सकट मे पडकर त्राहि त्राहि पुकार उठे।

यह कसे ?

अजी, इसमे कसे क्या थी, यह तो साफ बात है, पर लीजिए मैं साफ बात को और भी साफ करके आपसे कह रहा हूँ। रमजानी जो उस दिन सुबह सोकर उठा, तो दखा कि उसकी अलमारी के पास एक चूहा पडा है। चूहे की देह से तज बदबू आ रही थी और उसकी देह इस तरह फूली हुई थी जसे वह दो-तीन दिन तक पानी मे डूबा रहा हो।

रमजानी न चिमटे से उसकी पूछ पकडी और अपनी छत पर से गली म झाका। जब दखा कि कोइ नही देख रहा है तो झटके के साथ उसे गली मे फेंक दिया। यह चूहा प्लेग का चूहा था और अब आते जातो के हाथो प्लेग के कीडा के पासल नगर भर को भेज रहा था। नगर म वो प्लेग फली वो प्लेग फैली कि बेटा मरा तो बाप पानी देने नही आया। अब कहिए एक भूल न सारे नगर के प्राण सकट मे डाल दिये या नही ?

उन्नीसवी सदी के एक अनिम साल म जापान के एक नगर म प्लेग फैली। विशेषज्ञ न कहा कि चूहा से यह रोग फलता है। बस फिर क्या था एक तारीख तय हो गयी और सबन अपने-अपन घर के चूहे मार डाले। चूहा से हजारा मन खाद खेतो को मिली और उनकी खाल से बनाय गये कटोप तो रूस जापान युद्ध म बहुत ही गरम साबित हुए।

तो नागरिक का कत्तव्य है कि कोई ऐसा काम न करे, जिससे दूसरे नागरिका का कष्ट हो और उसका यह अधिकार है कि वह दूसरे नागरिका से ऐसे कामा की आशा न करे जिनसे उसे कष्ट होता हो।

पर यदि किसी की भूल से सकट आ ही आये, तो क्या किया जाये ?

बहुत सुन्दर प्रश्न है आपका। जी हाँ, आदमिया से भूल हो सकती है। उसक सुधार का वही तरीक़ा है, जो उस नगर के निवासिया ने किया कि वे इस बेकार की जांच-पडताल म नही पडे कि यह किसकी भूल स सकट आया बल्कि व सब उस सकट के निवारण मे जुट पडे।

अच्छा, मैं भी आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ कि हम मे स हरेक बडा आदमी बनना चाहता है पर यह तो बताइए कि बडा आदमी कहते किसे हैं ?

मैं आपके चहरे का भाव देखकर बिना आपके कहे हो समझ रहा हूँ

कि आप यह सोच रहे है कि वातचीत चल रही थी नगर की और सवाल पूछ लिया बडे आदमी के लक्षण का। कहिए, है न यही बात ? खैर, यही बात सही, पर यह बात भी सही है कि आप इस प्रश्न का जवाब दीजिए और फिर देखिए कि यह उस बातचीत म फिट हो जाता है या नही जो हमार आपके बीच चल रही है।

वडा आदमी वह है जो समाज क और आदमिया से ऊँचा हो।

यह आपका उत्तर है, पर मैं पूछता हू कि ऊचा क्या ? मानी क्या लम्बा सात फीट का आदमी ही बडा आदमी है ?

ना, जिसका समाज मे प्रभाव हो वही वडा आदमी है।

यह आपका दूसरा उत्तर भी मुझ नही जँचा। बात यह है कि प्रभाव तो कई बार बुरे आदमी भी जमा लेत है, समाज म, तो क्या इसलिए हम उन्ह बडा आदमी मान लें ? अच्छा लीजिए मैं ही अपने प्रश्न का उत्तर आपको दिये द रहा हूँ। बडा आदमी वह है जिसका हृदय बडा हो।

मेरे उत्तर को जरा समझ ले, ता नय-नय प्रश्नो की झडी लगाने से बच जाएँगे। सबसे छोटा आदमी वह, जो अपन पाँच फीट शरीर को ही अपना समझे। उससे वडा वह, जो अपन नगर को अपनी देह-सा ही अपना समझे। पाठ तो यह बहुत लम्बा है और वसुधैव कुटुम्बकम तक पहुँचता है, पर मैं यहा रुक जाऊँगा, क्योकि आदमी का बडापन अकसर परिवार तक ही रुक जाता है और भाग्य से वह नगर तक बढ जाये, तो फिर आगे की क्लास पढता बढना जा सकता है। नही ता उसका बडापन यानी मनुष्यता की फाइल, यही खत्म हो जाती है।

क्या हो जाएगी मनुष्यता की फाइल यही खत्म ?

यह नया प्रश्न है आपका। जान पडता है कि आप सूत्र म नही, व्याख्या म बातचीत करना चाहते है। यही सही, सुन लीजिए।

हमारे नगर के एक सज्जन है। नाम उनका कुछ भी हो, आप उन्ह पुकारिए बसन्तमाधव। श्री माधव अपना घर बुहारकर कूडा-करकट गली म फक देते है, अपने घर के चूह पकडकर पडोसिया की दहलीज मे छोड आते है, कोई उन्ह भोजन या पार्टी म बुलाता है तो अपने सुभीते से जाते हैं, भले ही प्रतीक्षा करते-करते और लोग परेशान हो जाएँ, अपने घर पर

किसी से मिलन का वचन देते हैं, तो आने वाला को आप वहाँ नही मिलते और वे बैठे झक मारत हैं। मतलब यह है कि उन्ह अपन आराम-सुभीते से मतलब, कोई मरे या जिये।

मैं पूछता हू आपसे कि क्या आप इन श्रीमान बसन्तमाधव जी से यह आशा कर सक्त हैं कि वे सार देश की चिन्ता करे और ससार के कल्याण की बात सोचें? यू नागरिक भावना का आप सक्षेप म एट्रेस की वह परीक्षा समझ कि जिसे पास किय बिना, कोई भी विश्वविद्यालय मे प्रवेश नही कर सकता।

अब आयी आपकी समझ मे मेरी बात?

न आयी हो तो फिर एक नये ढग स अपनी बात कहता हूँ। आप अपना घर साफ-सुथरा रखत हैं, एकदम शीशे सा चमचमाता, पर क्या मुसाफ़िर खाने, होटल धमशाला और मित्रा क ज़ीने म पान की पीक थूक देते हैं? यदि हाँ, तो आपकी मनुष्यता अस्वस्थ है।

आप अपनी आमदनी की एक एक पाई बचाते हैं और फ़िज़ूलखर्ची नही करते। आप अच्छे आदमी हैं और मैं आपकी प्रशसा करूँगा, पर जरा यह बताइए कि आपके घर के बाहर जो सरकारी नल लगा है, उसकी टाटी काम करने के बाद बन्द कर दने और इस तरह पानी खराब न होने के बारे मे आप कितने सावधान रहते हैं? साफ यह है कि आप अक्सर उसे खुला छोड आते हैं और खाने के बाद, घर मे अपने कमरे से उसकी आवाज सुन कर कभी भी आपको वैसा पछतावा नही हुआ जैसा पान खान के बाद अठन्नी पनवाडी को देकर अपनी चवन्नी बिना लिये लाट आन पर आपको एक बार हुआ था। तो क्या यह मनुष्यता की अस्वस्थता नही कि अपनी चवन्नी का नुकसान तो काँटे-सा चुभे पर अपने नगर के मनभर पानी का खिड जाना, आपके लिए कोई अथ ही न रखता हो?

मैं एक दिन अपने मित्र से मिलन गया। वे एक मिल के मालिक हैं और बडा शानदार दफ्तर है उनका। मैंने देखा कि उनकी मेज़ पर एक बन्द लिफाफा डाक मे आया पडा है। मुझ ख्याल हुआ कि वे इसे खोलना भूल गये हैं और ब्यापार की जाने क्या बात हो इसमे। मैंने कहा यह देखिए, आपका एक पत्र भूल से पडा रह गया है। इसे पहले पढ़ लीजिए।

बोले, मेरा नही है। जाने किसका डाक मे आ गया है, कई दिन से पडा है यो ही मेज़ पर।

मैंने उठाकर देखा, वह मेरे पडोसी का था और उस पर पाच दिन पुरानी मोहर थी।

मुझे दुख हुआ कि इन्हाने एक वार भी यह नही सोचा कि इसमे जाने क्या होगा। मनुष्यता की बात तो यह होती है कि ये उसे अपने आदमी के हाथो उनके पास भेजते और इतना नही, तो उसी दिन ये इमे अपनी डाक म डाकघर तो भेज ही सकते थे। तब भी वह दूसरे दिन उन्ह मिल जाता। मैं उस पत्र को ले आया और उन्हे जाकर दिया, जिनका वह था।

मुझे यह जानकर बहुत दुख हुआ कि उनके दूर के एक सम्बन्धी कही परदेश मे बीमार थे और उन्हाने रुपया मँगाया था।

अब बताइए कि वे बेचारे अपने इन सम्बन्धी महाशय को कितना नालायक समझ रहे होंगे, पर यह एक शिक्षित और साधन-सम्पन्न मनुष्य की मानसिक हीनता का फल था।

मेरा यह अधिकार है कि मैं अपने नगर के हरेक निवासी से यह आशा करूँ कि वह मेरा यानी सारे नगर के सुख-दुख का, दिक्कत आराम का अपने ही जसा ध्यान रखे और मेरा यह कत्तव्य भी है कि मै भी ऐसा ही करूँ। मुझे अपनी चिन्ता हो यह ठीक है, पर मुझे अपने नगर निवासियो के सामूहिक और व्यक्तिगत सुख दुख की भी चिन्ता हो, यह आवश्यक है।

इस लम्बी बातचीत मे जो कुछ अभी तक कहा गया है, उसे मैं एक प्रश्न मे समेटकर रख रहा हू।

वह प्रश्न यह है कि सबसे अच्छा नागरिक कौन है? और इसका उत्तर मैं यह दे रहा हू कि जो अपने एकान्त की घडिया मे अपने नगर की बात सोचे और उसकी अच्छी बातो से प्रसन्नता और बुरी बाता से दुख का अनुभव करे।

हम जलसो मे ऐसा व्यवहार भी कर सकते हैं, ऐसी बाते भी कर सकते हैं, जो हमारे जीवन मे न हा, पर एकान्त तो हमारा अपना ही है, वहाँ हम वही होते हैं जो असल मे होते हैं।

तो नगर के प्रश्नो पर एक भाषण दे देना और उसमे उन प्रश्ना के प्रति

सबसे ज्यादा चिन्ता प्रकट कर देना आसान है, पर एकान्त म उनकी याद आना कठिन है।

यह इसलिए कि एकान्त की यह चिन्ता हमारे आचरण पर निर्भर है और जो मनुष्य एकान्त म अपन नगर की चिन्ता करता है, दूसरे शब्दो मे जिसके जीवन म नागरिक भावना का आचरण है, जो अपने म नगर को और नगर मे अपने को अनुभव करता है उससे श्रेष्ठ नागरिक नगर म और कौन होगा!

है—एक मामूली अपराधी की तरह, और मुझे यह भी अधिकार नहीं कि मैं उस अपमान का बदला लेना तो दूर रहा, उसके लिए कहीं अपील या दया प्रार्थना ही कर सकूँ।

क्या कोई भूकम्प आया था, जिससे दीवार में दरार पड़ गयी ?

बड़े महत्त्व का प्रश्न है। इस अर्थ में भी कि यह बात को खिलने का, आगे बढ़ने का अवसर देता है और इस अर्थ में भी कि ठीक समय पर पूछा गया है। ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में एक अपूर्व आनन्द आता है, तो उत्तर यह है आपके प्रश्न का—

जी हाँ, एक भूकम्प आया था, जिससे दीवार में दरार पड़ गयी और लीजिए आपको कोई नया प्रश्न न पूछना पड़े, इसलिए मैं अपनी ओर से ही कह रहा हूँ कि यह दीवार थी मानसिक विचारों की इसलिए यह भूकम्प भी किसी प्रान्त या प्रदेश में नहीं उठा, मेरे मानस में ही उठा था।

मानस में भूकम्प उठा था ?

हाँ जी मानस में भूकम्प उठा था और भूकम्प क्या कोई धरती थोड़े ही हिली थी, आकाश थोड़े ही काँपा था एक तेजस्वी पुरुष का अनुभव ही वह भूकम्प था, जिसने मुझे हिला दिया।

वे तेजस्वी पुरुष थे स्वर्गीय पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय। अपने महान् राष्ट्र की पराधीनता के दीन दिनों में जिन लोगों ने अपने रक्त से गौरव के दीपक जलाये और जो घोर अन्धकार और भयंकर बवण्डरों के झकझोरों में जीवन भर खेल, उन दीपकों को बुझने से बचाते रहे, उन्हीं में एक थे लालाजी। उनकी कलम और वाणी दोनों में तेजस्विता की अद्‌भुत किरणें थीं।

वे उन्हीं दिनों सारे संसार में घूमे थे। उनके व्यक्तित्व के गठन में, उनके परिवार उनके पास पड़ोस और उनके नगर ने अपने सर्वोत्तम रत्नों की ज्योति उन्हें भेंट दी थी। अजी, क्या बात थी उनके व्यक्तित्व की, क्या देखने में क्या सुनने में ! वे एक अपूर्व मनुष्य थे। कौन था दुनिया में जिस पर वे मिलते ही छा न जाते, पर संसार के देशों में घूमकर वे अपने देश में लौटे, तो उन्होंने अपना सारा अनुभव एक ही वाक्य में भरकर बिखेर दिया। वह अनुभव ही तो वह भूकम्प था, जिसने मेरी पूर्णता को एक ही ठसक में अपूर्णता की कसक से भर दिया।

उनका वह अनुभव था कि "मैं अमरिका गया, इगलैण्ड गया, फ्रास गया और ससार के दूसरे देशो म भी घूमा, पर जहाँ भी मैं गया, भारतवर्ष की गुलामी की लज्जा का कलक मेरे माथ पर लगा रहा।" क्या सचमुच यह अनुभव एक मानसिक भूकम्प नही है, जो मनुष्य को झकझार कर कहे कि किसी मनुष्य के पास ससार के ही नही, यदि स्वग के भी सब उपहार आर साधन हा, पर उसका देश गुलाम हो या किसी भी दूसरे रूप म हीन हो तो व सारे उपहार और साधन उसे गौरव नहा दे सक्त ?

इस अनुभव की छाया मे मैं सोचता हू कि मरा कत्तव्य है कि मुझे निजी रूप मे सारे ससार का राज्य भी क्यो न मिलता हो, म कोइ एसा काम न करूँ जिनस मेरे देश की स्वतन्त्रता को दूसरे शब्दा म उसके सम्मान को, धक्का पहुच, उसकी किसी भी प्रकार की शक्ति म कमी आय, साथ ही उसके एक नागरिक के रूप मे मेरा यह अधिकार भी है कि अपने देश के सम्मान का पूरा-पूरा भाग मुझे मिले और उसकी शक्तिया से अपने सम्मान की रक्षा का मुझे, जहाँ भी मैं हू, भरोसा रहे।

अजी, भला एक आदमी अपने इतने बडे देश के लिए कर ही क्या सकता है ! फिर कोई बडा वैज्ञानिक हो तो वह अपन आविष्कार से ही देश को कुछ बल दे या फिर कोई बहुत बडा धनपति हो तो वह अपने धन का भामाशाह की तरह समय पर त्याग कर ही कुछ काम आ सक्ता है, पर हरेक आदमी न तो ऐसा वैज्ञानिक ही हो सकता है, न धनिक ही। फिर जो बेचारा अपनी ही दाल रोटी की फिक्र मे लगा हुआ हो, वह अपन देश के लिए चाहते हुए भी क्या कर सकता है ?

आपका प्रश्न विचारा को उत्तेजना देता है, इसम कोई सन्देह नही पर इसमे भी सन्देह नही कि इसमे जीवनशास्त्र का घार अज्ञान भी भरा हुआ है। अरे भाई, जीवन कोई आपके मुन्ने की गुडिया थोडे ही है कि आप कह सकें कि बस यह है,- इतना ही है। वह तो एक विशाल समुन्दर का तट है, जिस पर हरक अपन लिए स्थान पा सकता है।

लो, एक और बात बताता हू आपको। जीवन को दशनशास्त्रियो ने बहुमुखी बताया है, उसकी अनेक धाराएँ है। सुना नही आपने कि जीवन एक युद्ध है और युद्ध मे लडना ही तो काम नही होता। लडने वाला को

रसद न पहुचे तो वे कसे लडें। किसान ही खेती न उपजाये तो रसद पहु चाने वाले क्या करें और लो, जाने दो बडी-बडी बातें—युद्ध म जय बोलन वालो का भी महत्त्व है।

जय बोलन वाला का ?

हाँ जी युद्ध मे जय बोलने वाला का भी बहुत महत्त्व है। कभी मच देखने का अवसर मिला ही होगा आपको, देखा नही आपने कि दशका की तालिया स खिलाडिया के परा म बिजली लग जाती है आर गिरते खिलाडी उभर जात है ? कवि-सम्मेलना और मुशायरा की सारी सफलता दाद देन वाला पर ही निभर करती है इसलिए मैं अपने देश का कितना भी साधारण नागरिक क्या न हूँ, अपन देश के सम्मान की रक्षा के लिए बहुत कुछ कर सकता हू। अकेला चना क्या भाड फोडे—यह कहावत, अपन अनुभव के आधार पर ही आपसे कह रहा हू—कि सौ फी सदी झूठ है। इतिहास साक्षी है बहुत बार अकेले चन ने ही भाड फोडा है और एसा फोडा है कि भाड खील खील हो नहीं हा गया, उसका निशान तक ऐसा छूमन्तर हुआ कि कोई यह भी न जान पाया कि वह बेचारा आखिर था कहाँ।

मैं जानता हूँ इतिहास की गहराइया मे उतरन का समय नहीं है, पर दो छोटी कहानियाँ ता सुन ही सकत हैं आप, और कहानियाँ भी न प्रेम-चन्द की है न ऐन्टन चेखव की। दो युवका के जीवन की दो घटनाएं हैं पर उन दो घटनाओं म वह गाँठ इतनी साफ है जो नागरिक और देश को एक साथ बाँधती है कि आप दो बडी-बडी पुस्तके पढकर भी उसे इतना साफ नही देख सकत।

हमारे देश के महान सत स्वामी रामतीर्थ एक बार जापान गय। वे रेल म यात्रा कर रह थे कि एक दिन ऐसा हुआ कि उन्हे खाने को फल न मिले और उन दिनो फल ही उनका भोजन था। गाडी एक स्टेशन पर ठहरी तो वहाँ भी उन्होंने फलो की खोज की पर वे पा न सके। उनके मुह से निकला—जापान मे शायद अच्छे फल नही मिलते !

एक जापानी युवक प्लेटफार्म पर खडा था। वह अपनी पत्नी को रेल मे बैठाने आया था, उसने ये शब्द सुन लिये। सुनते ही वह अपनी बात

बीच म छोडकर भागा और कही दूर से एक टोकरी ताजे फल लाया। वे फल उसन स्वामी रामतीथ को भेंट करते हुए कहा—लीजिए, आपको ताज़े फलों की जरूरत थी।

स्वामीजी ने समझा कि यह कोई फल बेचने वाला है और उनके दाम पूछे, पर उसने दाम लेने से इनकार कर दिया। बहुत आग्रह करने पर उसने कहा आप इनका मूल्य देना ही चाहते है तो वह यह है कि आप अपने देश म जाकर किसी से यह न कहिएगा कि जापान म अच्छे फल नही मिलते।

स्वामीजी युवक का यह उत्तर सुनकर मुग्ध हो गये, और वे क्या मुग्ध हो गय उस युवक ने अपने इस काय से अपने देश का गौरव जाने कितना बढा दिया।

इस गौरव की ऊँचाई का अनुमान आप दूसरी घटना सुनकर ही पूरी तरह लगा सकते हैं। एक दूसरे देश का निवासी एक युवक जापान मे शिक्षा लेने आया। एक दिन वह सरकारी पुस्तकालय से एक पुस्तक पढने को लाया, जिसम कुछ दुलभ चित्र थे। ये चित्र इस युवक न पुस्तक म से निकाल लिये और पुस्तक वापस कर आया। किसी जापानी विद्यार्थी न यह देख लिया और पुस्तकालय को इसकी सूचना दे दी। पुलिस ने तलाशी लेकर वे चित्र उस विद्यार्थी के कमरे से बरामद किये और उस विद्यार्थी को जापान से निकाल दिया गया।

मामला यही तक रहता तो कोई बात न थी। अपराधी को दण्ड मिलना ही चाहिए, पर मामला यही तक नही रुका और उस पुस्तकालय के बाहर बोड पर लिख दिया गया कि उस देश का (जिसका वह विद्यार्थी था) कोई निवासी इस पुस्तकालय म प्रवेश नहा कर सकता।

मतलब साफ है, एकदम साफ—कि जहाँ एक युवक ने अपने काम से अपने देश का सिर ऊँचा किया था, वही एक युवक ने अपने देश के मस्तक पर कलक का ऐसा टीका लगाया, जो जाने कितने वर्षों तक ससार की आँखो मे उसे लाञ्छित करता रहा।

इन घटनाओ से क्या यह स्पष्ट नही होता कि हरेक नागरिक अपने देश के साथ बँधा हुआ है और देश की हीनता और गौरव का ही फल उसे नहीं मिलता, उसकी हीनता और गौरव का फल भी उसके देश को मिलता है?

मैं अपने देश का नागरिक हूँ और मानता हूँ कि मैं अपना देश हूँ। जैसे मैं अपने लाभ और सम्मान के लिए हरेक छोटी छोटी बात पर ध्यान देता हूँ, वैसे ही मै अपने देश के लाभ और सम्मान के लिए भी छोटी छोटी बातो तक पर ध्यान दू, यह मेरा कर्त्तव्य है और जैसे मैं अपने सम्मान और साधनो से अपने जीवन मे सहारा पाता हूँ वैसे ही देश के सम्मान और साधनो से भी सहारा पाऊँ, यह मेरा अधिकार है। बात यह है कि मैं और मेरा देश दो अलग चीजें तो है ही नही।

मैंने जो कुछ जीवन मे अध्ययन और अनुभव से सीखा है, वह यही है कि महत्त्व किसी कार्य की विशालता मे नही है, उस कार्य के करने की भावना मे है। बडे से बडा कार्य हीन है, यदि उसके पीछे अच्छी भावना नही है और छोटे से छोटा कार्य भी महान है, यदि उसके पीछे अच्छी भावना है।

महान कमालपाशा उन दिनो अपने देश तुर्की के राष्ट्रपति थे। राजधानी मे अपनी वर्षगाँठ का उत्सव समाप्त कर जब वे अपने भवन मे ऊपर चले गये तो एक देहाती बूढा उन्हे वर्षगाँठ का उपहार भेंट करने आया। सेक्रेटरी ने कहा—अब तो समय बीत गया है। बूढे ने कहा—मैं तीस मील से पैदल चलकर आ रहा हूँ, इसलिए मुझे देर हो गयी।

राष्ट्रपति तक उसकी सूचना भेजी गयी, कमालपाशा विश्राम के वस्त्र बदल चुके थे, वे उन्ही कपडो मे नीचे चले आये और उन्होने बूढे किसान का उपहार स्वीकार किया। यह उपहार मिट्टी की छोटी हँडिया मे पाव भर शहद था जिसे बूढा स्वयं तोडकर लाया था। कमालपाशा ने हँडिया को स्वयं खोला और उसमे से दो उँगलियाँ भरकर चाटने के बाद तीसरी उँगली शहद मे भरकर बूढे के मुह मे दे दी, बूढा निहाल हो गया।

राष्ट्रपति ने कहा—दादा आज सर्वोत्तम उपहार तुमने ही मुझे भेंट किया, क्योकि इसमे तुम्हारे हृदय का शुद्ध प्यार है। उन्होने आदेश दिया कि राष्ट्रपति की शाही कार मे शाही सम्मान के साथ उनके दादा को गाँव तक पहुँचाया जाए।

क्या यह शहद बहुत कीमती था ? क्या उसमे मोती-हीरे मिले हुए थे ? ना, उस शहद के पीछे उसके लाने वाले की भावना थी जिसने उसे सौ

लालो का एक लाल बना दिया।

हमारे देश मे भी एक ऐसी ही घटना घटी थी। एक किसान ने रगीन सुतलियो से एक खाट बुनी और उसे रेल मे रखकर वह दिल्ली लाया। दिल्ली स्टेशन से उस खाट को अपने कन्धे पर रखे वह भारत के प्रधान-मत्री पण्डित नेहरू की कोठी पर पहुँचा। पण्डितजी कोठी से बाहर आये तो वह खाट उसने उन्हे दी। पण्डितजी को देखकर वह इतना भाव मुग्ध हो गया कि मुह से कुछ कह ही न सका। पण्डितजी ने पूछा कि क्या चाहते हो तुम?

उसने कहा, यही कि आप इसे स्वीकार करें। प्रधानमन्त्री ने उसका यह उपहार स्वीकार ही नही किया, अपना एक फोटो दस्तखत कर उसे स्वय उपहार म दिया—दस्तखती फोटो के लिए देश के बडे-बडे लोग, विद्वान् और धनी तरसत हैं! वह क्या उस मामूली खाट के बदले म दिया गया था? ना, वह तो उस खाट वाल की भावना का ही सम्मान था।

क्यो जी, हम यह कैसे जान सकते हैं कि हमारा काम देश के अनुकूल है या नही?

वाह, क्या सवाल पूछा है आपने। सवाल क्या, बातचीत म आपने तो एक कीमती मोती ही जड दिया यह, पर इसके उत्तर म सिर्फ हा या ना से काम न चलेगा, मुझे थोडा विवरण देना पडेगा।

हम अपने कार्यों का देश के अनुकूल होने की कसौटी पर कसकर चलने की आदत डालें, यह बहुत उचित है, बहुत सुन्दर है, पर हम इसम तब तक सफल नही हो सकते जब तक कि हम अपने देश की भीतरी दशा को ठीक से न समझ ले और उसे हमेशा अपने सामने न रखे।

हमारे देश को दो बातो की सबसे पहले और सबसे ज्यादा जरूरत है। एक शक्ति बोध और दूसरा सौन्दर्य-बोध। बस, हम यह समझ ले कि हमारा कोई भी काम ऐसा न हो जो देश मे कमजोरी की भावना को बल दे या कुरुचि की भावना को ही।

जरा अपनी बात को और स्पष्ट कर दीजिए, यह आपकी राय है और मैं इससे बहुत ही खुश हूँ कि आप मुझसे यह स्पष्टता माँग रहे हैं।

क्या आप चलती रेलो मे, मुसाफिरखानो मे, क्लबो मे, चौपालो पर

और मोटर बसों में कभी ऐसी चर्चा करते है कि हमारे देश मे यह नही हो रहा है वह नहीं हो रहा है और गड़बड़ है, बड़ी परेशानी है, साथ ही इन स्थानों में या इसी तरह के दूसरे स्थानों में आप कभी अपने देश के साथ दूसरे देशों की तुलना करते हैं और इस तुलना में अपने देश को हीन और दूसरे देश को श्रेष्ठ सिद्ध किया जाता है?

यदि इस प्रश्न का उत्तर हाँ है तो आप देश के शक्ति-बोध को भयकर चोट पहुँचा रहे हैं और आपके हाथों देश के सामूहिक मानसिक बल का ह्रास हो रहा है। सुनी है आपने शल्य की बात? वह महाबली कर्ण का सारथी था। जब भी कर्ण अपने पक्ष के विजय की घोषणा करता, हुंकार भरता, वह अर्जुन की अजेयता का एक हलका सा उल्लेख कर देता। बार बार के इस उल्लेख ने कर्ण के सघन आत्मविश्वास मे सन्देह की तरेड डाल दी, जो उसके मन में भावी पराजय की नींव रखने में सफल हो गयी।

अच्छा, आप इस तरह की चर्चा कभी नहीं करते! तो मैं आपसे दूसरा प्रश्न पूछता हूँ। क्या आप कभी केला खाकर छिलका रास्ते में फेंकते हैं, अपने घर का कूड़ा बाहर फेंकते हैं, मुह से गन्दे शब्दों में गन्दे भाव प्रकट करते हैं इधर की उधर, उधर की इधर लगाते हैं, अपना घर, दफ्तर, गली, गन्दा रखते हैं होटलों धर्मशालाओं मे या ऐसे ही दूसरे स्थानों में, जीनों में, कोनों मे, पीक थूकते हैं? उत्सवों, मेलों, रेलों और खेलों मे ठेलमठेल करते हैं और इसी तरह किसी भी रूप में क्या सुरुचि और सौन्दर्य को आपके किसी काम से ठेस लगती है?

यदि आपका उत्तर हाँ है, तो आपके द्वारा देश के सौन्दर्य-बोध को भयकर आघात लग रहा है और आपके द्वारा देश की संस्कृति को गहरी चोट पहुँच रही है।

क्या कोई ऐसी कसौटी भी बनायी जा सकती है, जिससे देश के नागरिकों को आधार बनाकर देश की उच्चता और हीनता को हम तोल सकें?

लीजिए, चलते चलते आपको इस प्रश्न का भी उत्तर दे ही दूं। इस उच्चता और हीनता की कसौटी है चुनाव।

जिस देश के नागरिक यह समझते हैं कि चुनाव मे किसे अपना मत देना चाहिए और किसे नही, वह देश उच्च है और जहाँ के नागरिक ग़लत

लोगो क उत्तेजक नारो या व्यक्तियो के ग़लत प्रभाव म आकर मत दत हैं, वह हीन है।

इसलिए मैं कह रहा हूँ कि मेरा यानी हरेक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह जब भी कोई चुनाव हो, ठीक मनुष्य को अपना मत द और मरा अधिकार है कि मेरा मत लिये बिना कोई भी आदमी, वह ससार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष ही क्यो न हो, किसी अधिकार की कुरसी पर न बठ सके।

मैं और मैं

• •

जब देखो गुमसुम जब देखो गुमसुम ! अरे भाई, तुम्हें क्या साँप सूंघ गया है कि सुबह के सुहावन समय में यों चुपचाप बैठे हो ? तुमसे अच्छे तो देवीकुण्ड के कछुए ही है कि तैरते नज़र तो आ रहे हैं। उठो, दो चार किलकारियाँ भरो और अँगीठी के पेट में गोला डालो, जिससे अपना पेट भी गरमाये।

ओ हो तुम कहाँ से आ टपके इस समय ? कोई कितने ही गम्भीर मूड में हो विचारों की कितनी ही गहराइयों में उतर रहा हो, तुम्हारी आदत है बीच में आ कूदना और फलाने लगना लन्तरानियों के लच्छे—एक के बाद एक। यह सच है कि यह बहुत बुरी आदत है।

तो हम लन्तरानियों के लच्छे फैलाते हैं और तुम गम्भीर मूड में रहते हो। सचाई यह है भाई जान कि ज़माना बहुत खराब है। जिस गधे को नमक दो वही कहता है कि मेरी आँख फोड़ दी। हम जा रहे थे अपने काम तुम्हें दूर से देखा सुस्त रास्ता काटकर इधर आये कि देखें तो माजरा क्या है और मामला कुछ गड़बड़ हो, तो कुछ मदद करें, पर तुम्हारे तेवर कुछ ऐसे बदले हुए हैं कि जैसे हम सुबह सुबह चार रुपये उधार माँगने आ गये हों और पहले इसी तरह हाथ उधार उठाये रुपये हमने अभी तक वापस न किये हों। बहुत अच्छे रहे !

ना, ना यह बात नहीं है। तुम्हारा आना सर आँखों पर, तुम भी यह क्या बात कह रहे हो पर बात यह है कि मैं इस समय बहुत गहरे चिन्तन में था और लो बताऊँ तुम्हें गहरे चिन्तन में क्या था, मैं अपने आप में खोया हुआ हूँ आज।

वाह भाई, वाह, क्या कहने ! लो, फिर बताऊँ तुम्हे मैं भी एक बात कि आज तुमने ऐसी दूर की हाँकी कि अब तक के सब छौक मात हो गये। हाँ जी, तो आज तुम अपने आप म खोये हुए हो। मिया, खोय हुए हो, तो डौडी पिटवाओ या पुलिस म रिपोट लिखाओ। खडे खडे क्या देख रहे हो भैंगे बबूल से !

तुम भी अजब आदमी हो कि मैं कह रहा हूँ सरल सुभाव एक गहरी बात और तुम उडा रहे हो गुटप्पे, पर बात यह है कि पढाई के लिए एक पैसा कभी किसी मास्टर को तुमने दिया नही, अक्ल आये भी तो कहा से। लो, फिर मैं आज तुम्हे तुम्हारे ही जैसो की एक कहानी सुनाता हूँ। उसे सुनकर तुम समझोगे कि कैसे आदमी अपने आप मे खोया जाता है।

पाच आदमी आपस मे गहरे दोस्त थे। करने धरने की कुछ नही, खाने को दोनो समय रोटी और पीने को भग चाहिए—पाचो पक्के भगडी—पियें और धुत्त पडे रह। एक दिन कही मन्दिर मे बैठे घोट रह थे कि उन पाचो की स्त्रिया इकट्ठी होकर जा पहुँची और लगी दिल के गुब्बार निकालने। जो दस पाच आदमी वहा और थे, उन्होंने भी इन स्त्रिया की बात का समथन किया। बडी बेइज्जती हुई और पाचो ने कही परदेश मे जाकर रोजगार करने का फैसला किया।

पाचो चल पडे। चलत चलते आपस म सलाह की कि भाई, होशियारी मे चलियो, कही रास्ते मे ऐसा न हो कि साँच हो जाय जरा गहरी और कोई खोया जाये—लौटकर उसकी घरवाली को क्या जवाब देगे फिर। कुछ दूर गये, रात हुई, एक मन्दिर म पडकर सो गये। सुबह उठते ही तय पाया कि भाई, पहले गिन लो, सब चौकस भी ह।

उनमे से एक ने सबको गिना एक, दो तीन, चार, फिर गिना एक, दो, तीन, चार। जोर से चिल्लाकर कहा—अरे, हम तो घर से पाच चले थे य तो रात भर म ही चार रह गये। दूसरे ने दुबारा सबको गिना, पर वे ही चार। तीसरे ने गिना, तब भी चार ही रहे। मामला सगीन हो गया और तय पाया कि लौटकर घर चलें—शायद पाचवाँ आदमी रात म घर चला गया हो।

रास्त मे सबके सब रोत-पीटत लौट रहे थे कि एक समझदार आदमी

मिला। उसने इन्हे रोककर पूछा कि वे किस मुसीबत मे हैं ? इन्होंने बताया कि हम घर से पाँच चले थे, पर रात भर म चार ही रह गय। उस आदमी ने इन्ह गिना, तो य पाँच थे। उसन कहा भले आदमियो, तुम घर मे पाँच चले थे और पाँच ही अब हो, तो रो क्यो रहे हो ?

अब इन भगडियो म स एक ने फिर सबको गिना—एक, दो, तीन, चार।

समझदार ने कहा—अरे भाई अपने को तो गिन। अब इन लोगो की समझ मे आया कि मामला यह है कि जो गिनता है, अपने को भूल जाता है। वही हाल मेरा हो रहा है कि मैंने घर की सोची, पडोसी की सोची, देश की सोची और यो समझो कि दुनिया की बातें सोच मारी, पर अपनी बात भूल गया और कभी यह न सोचा कि आखिर मेरा मेरे प्रति क्या कर्त्तव्य है और क्या अधिकार है। आज मैं यही सोच रहा था कि तुम आ गये। कहो फिर, मैं गहरे चिन्तन मे था या नही ?

भाई बात तो तुम्हारी कुछ पते की-सी लगती है कि हम दुनिया की बात सोचते हैं, पर अपनी नही, और सच बात बडे कह गय हैं कि—आप मरे जग परलौ—यानी हम मर गय तो दुनिया मर गयी। हम नही तो जहान नही। *बात मन को लगती है, पर अपने बारे मे सोचें ही क्या ?*

नही सोचते, तो लिखाओ पशुओ मे नाम, क्योकि जो सोचता नही, वह पशु है—जानवर है।

तो हम पशु हैं आपकी राय मे ? वाह साहब, आप हम पशु बता रहे हैं, पर भाई, यह तो बताओ कि तुम्हे हमारी पूछ और सीग किधर दिखाई दिय हैं ?

पूछ और सीग ! पशु बनने के लिए पूछ और सीग की जरूरत नही पडती। बात यह है कि पशुता और मनुष्यता दो भाव है। जो पहले सोचे और फिर चले वह मनुष्य और जो सोचे कुछ नही, बस जिधर हवा ले जाये, चला चल वह पशु—अब आयी तुम्हारी समझ मे मेरी बात ?

तो सोचना जरूरी है ?

जी हाँ सोचना जरूरी है और अपने बारे म सोचना जरूरी है। मैं यही जरूरी काम कर रहा था जब तुम आय।

महाकवि शेखसादी एक दिन अपने बेटे के साथ सुबह की नमाज पढ़कर लौट रहे थे। उनके बेट न देखा कि रास्ते के दोना तरफ वाले घरो मे अभी तक बहुत से आदमी सोय पडे हैं। उसन अपने पिता स कहा, अब्बा, य लोग कितन पापी हैं कि अभी तक पडे सो रह हैं और नमाज पढने नही गये।

विचारक शेखसादी न दुख भरे स्वर म कहा—बेटा, बहुत अच्छा होता कि तू भी सोता रहता और नमाज पढ़न न आता।

बेट न आश्चय से पूछा—यह आप क्या कह रह हैं, मेरे अब्बा ?

शेखसादी न और भी गहरे म डूबकर कहा—तब तू दूसरा की बुराई खाजने के इस भयकर पाप स तो बचा रहता, मेरे बेट !

मतलब यह कि अपन बारे म सबसे पहले जो बात सोचन की है, वह यह कि मरा यह अधिकार है कि मैं अच्छे काम करू, अपने जीवन को ऊँचा उठाऊँ, पर मेरा यह कत्तव्य भी है कि जो किसी कारण से अच्छे काम नही कर रह है या साफ शब्दा म गिरे हुए हैं, उन्ह अपने कामा से ऊँचे उठने की प्रेरणा दत हुए भी, उन पर अपने अहकार का बोझ न लादू, क्योंकि अहकार घृणा का पिता है और घृणा जीवन की सम्पूण ऊँचाइया की दुश्मन है।

खास बात यह है कि घृणा उसका घात करती है, जो घृणा करता है और इस तरह मैं दूसरा से घृणा करके अपना ही घात करता हूँ।

तो घृणा को रोकना जरूरी है ?

हाँ जी, घृणा का रोकना—उस उत्पन्न ही न होने देना, बहुत जरूरी है, पर रोकन की बात कहकर तुमन मुझे एक पुरानी बात याद दिला दी।

मरे एक मित्र हैं श्री कौशल जी। उन्ह अपने जीवन म पहली असफलता यह मिली कि व एंट्रेंस पास न कर सके और नाइन्थ म ही उन्ह स्कूल को नमस्कार करना पडा।

इसके कुछ दिन बाद ही उन्होन एक छोटा-सा प्रेस खोल लिया। साझी समझदार था, कर्जा प्रेस के नाम लिखता रहा, आमदनी अपने। प्रेस फेल हो गया और मेरे मित्र चौराहे पर खडे दिखाई दिये।

अपने पिता की पूरी पूजी लगाकर उन्हाने बतना का एक कारखाना

खोल लिया। बतन बनते, कलई होती, रुपये छनका करते। सेठों म गिनती होने लगी पर तभी उनकी पत्नी बीमार हो गयी। उस लिये इरविन अस्पताल पडे रह। कारखाना मजदूर खा गये। पाँच महीने बाद लौटकर आये, तो लेना कम था देना बहुत। यहाँ भी ताला बन्द किया। पन्सारी की थोक दुकान की। मेवा के ढेर लग गये—ढेरा आती, बोरियो जाती। फिर रुपया बरसने लगा, पर जाने कैसे ये घटाएँ भी छिनरा गयी और पत्नी का सारा जेवर बेचकर जान छूटी।

खाली तो रह ही न सकते थे। घर से दूर जाकर होटल खोल लिया। चला, चमका और ठप्प हो गया। वहाँ से भी हट और अपने सम्बन्धी की सोडा वाटर फक्टरी मे बठने लग। यहाँ से एक बीमा कम्पनी म गये, खूब चमके। बीमा कम्पनी म डायरेक्टरो का कुछ झमेला मचा, तो इन्होने शबत की दुकान खोल ली और एक अखबार निकाल दिया। दोनो खूब चले, पर चलकर टिके नही चले ही गये।

अब यह एक बहुत बडी कम्पनी के मनेजिंग डायरेक्टर थे। यहाँ ये ऐसे चमके कि पिछली सब चमकें धीमी पड गयी। एक बार तो ऐसी हवा बँधी कि गाँठ बँध गयी पर फिर वे ही बहुत-सी बातें इकटठी हुइ और कम्पनी मे ताला पडा।

मेरे मित्र अब पुस्तक प्रकाशक थे। बाजार उनकी पुस्तको से छाया हुआ था, धूम थी। खूब जोर रहे। देश स्वतन्त्र हुआ, उन्ह एक यात्रा के बीच म एक जाति के लोगो ने उतार लिया और जाने कितन दिन बन्दी रहे। जाने कसे बचे और कहाँ कहाँ भटकते रहे। बहुत दिन बाद एक पत्र कार के रूप म प्रकट हुए और अब शान्ति के साथ सम्मान की और व्यवस्था की जिन्दगी बिता रहे हैं।

उन्ह देखकर बराबर मेरा दिमाग़ चक्कर मे रहता कि ये सज्जन कितने अदभुत है कि इतनी असफलताओ के थपडे खाकर भी निराश नही हुए। मैं उनके बारे म बहुत सोचता, पर उनके व्यक्तित्व का रहस्य न समझ पाता।

एक दिन एक अन्य मित्र आये श्री सिहल। उनका कारखाना भी फेल हो गया था और वे उसका मामला निपटाने मे मेरा सहयोग चाहते थे।

उनकी दो मोटरें बिकनी थी, पर पूरे दाम देने वाला कोई ग्राहक बाजार मे न था। एक दिन बहुत ऊबे हुए मेरे पास आकर बोले—तो भाई साहब, जितने मे बिकती है उतने मे वेच दे, पर यह मामला निपटा दे।

मैने कहा, मामला तो निपटाना ही है, पर दस हजार की गाडिया छह हजार म कसे वच दू?

बोले—छह हजार मे ही वेच दीजिए। बात यह है कि यह मामला निपट जाये, तो मैं फ्रेश स्टाट ल सकता हूँ।

मेरे कानो म पडा—फ्रेश स्टाट—इसका अथ होता है—नया ताजा आरम्भ। सुनते ही मुझे एक नयी ताजगी अनुभव हुई और मैंने सोचा—हर नया आरम्भ अपने साथ एक ताजगी, एक तेजी, एक स्फुरणा लिये आता है।

तभी याद आ गये मुझे फिर कौशल जी, जो जीवन म बार बार असफल होकर भी थके नही, ऊबे नही और बराबर आगे बढते रह और आज ही पहली बार मेरी समझ मे आया, उनकी उस अपराजित वत्ति का रहस्य। यह रहस्य है—नया ताजा आरम्भ। वे हारे पर हारकर रुके नही और इस न रुकन मे ही उनकी सफलता का रहस्य छिपा हुआ है।

मैंने सोचा—मेरा अपने प्रति यह अधिकार है कि मै हार जाऊँ थक जाऊँ, गिर भी पड़ूँ और भूलूँ भटकूँ भी, क्योकि यह सब एक मनुष्य के नाते मरे लिए स्वाभाविक है सम्भव है, पर मेरा यह कत्तव्य है कि मैं हार कर भागू नही, थककर बैठू नही, गिरकर गिरा ही न रहू और भूल भटक कर भरमता ही न फिरूँ, जल्दी से जल्दी अपनी राह पर आ जाऊँ अपने काम म लग जाऊँ और एक नया आरम्भ करूँ, क्योकि रुक जाना ही मेरी मत्यु है और मरने से पहले मरना, न मेरा अधिकार है न कत्तव्य?

अभी मैंने कहा कि रुक जाना ही मेरी मत्यु है और यह बिल्कुल ठीक कहा है मैने, पर एक बात बताऊँ तुम्ह कि रुक जाना ही जीवन की सबसे बडी कला है—बुद्धि की सबसे बडी कसौटी है यह प्रश्न कि कहा रुकू।

वाह भाई वाह, अभी कह रहे थे कि रुक जाना मृत्यु है, अब कह रहे हो, यही जीवन की सबसे बडी कला है और साथ ही यह भी कि दोनो बातें सोलह आने सच है। आखिर बात करते हो या मजाक छौकते हो।

जी, मजाक नही छौकता, बात करता हूँ और बडे पते की बात करता

...) का अध्ययन ही नही, अनुभव भी है। रुक जाना ही मृत्यु है यह तो तुम भी मानते हो, पर बुद्धि की सबसे बडी कसौटी है यह प्रश्न कि कहाँ रुकू, और यह अनुभव इग्लण्ड के भूतपूर्व विदेशमन्त्री ऐन्थोनी ईडन का है कुछ मेरा नही।

ऐंथोनी ईडन का यह अनुभव है कि मैं कहाँ रुकूँ यह प्रश्न बुद्धि की बसे बडी कसौटी है?

जी हाँ ता पूरी बात ही जो सुन ला। इग्लैण्ड की पालियामण्ट मे लते हुए एक बार उ होने युद्ध के दिना का अपना एक सस्मरण सुनाया।

हिटलर तूफान की तरह बढा चला आ रहा था, पर तब उसकी दोस्ती स टूट चुकी थी और अंग्रेज रूस को अपन साथ मिलान की कोशिश रहे थे। अफवाह उड रही थी कि हिटलर इग्लैण्ड पर चढाई करेगा रूस पर और तभी एक दिन अचानक हिटलर की फौजें रूस पर चढ थी। तभी की बात है। इग्लण्ड क बिदशमन्त्री की हैसियत स नी ईडन रूस क सर्वेसर्वा श्री स्तालिन से मिल रहे थे। हिटलर की ो से इग्लण्ड म भय का तूफान उठा हुआ था। महाशय स्तालिन ने को विश्वास दिलाया कि व यह विश्वास करें कि हिटलर जरूर परा- ा जायेगा और वह इग्लण्ड की ओर देखन का अवसर न पा सकगा। ह सुनकर ईडन को शाति मिली, पर वे मुसकराये। दुनिया का बडे बुद्धिमान् इस मुसकराहट का अथ यही लगाता कि ईडन को नही हुआ है पर महाशय स्तालिन उसका ठीक अथ भाप गय और बोले। मैं तुम्हारी मुसकराहट का अथ समझ गया हूँ। तुम सोच ि हिटलर तो हार जायेगा, पर उसके बाद क्या होगा। सुनो, हुत बहादुर है, पर वह बढ़ना जानता है, रुकना नही और मैं जानता हूँ। महाशय स्तालिन का आशय यह था कि हिटलर को ाद मैं और नही बढूगा और बस वही रुक जाऊँगा, इग्लैण्ड को ि खतरा नहा।

कना बडी बात! और इस बडी बात को अपने म पीकर मैं

सोच रहा हूँ कि मेरा यह अधिकार है कि जीवन की चारो ओर फली हुई गलिया म मैं जिधर चाहूँ बढू पर अपन प्रति मेरा यह कत्तव्य है कि जहा रुकने की जगह है, वहाँ रुकन म पलभर भी न झिझकू, रुक जाऊँ और बस एकदम वही रुक जाऊँ, क्याकि रुकने की जगह से एक कदम आगे बढना भी भयकर है।

देखा तुमने, सचाई यह है कि हरेक बात के दो पहलू है। जो दोना को साधकर चलता है, वही चतुर है। तुम मेरे पास किसी काम से आत हो, मैं उस पर हाँ कहता हूँ। तुम मुझे कोई सेवा सौपते हो, मैं हाँ कहता हू। तुम मुझसे कुछ माँगते हो, मैं हाँ कहता हूँ। तुम सब मेरी तारीफ करत हो, क्योकि हाँ सबका प्यारी है, पर मनुष्य का चरित्र हाँ मे नही, ना म है। हाँ कहना आसान है, पर मनुष्य वह है कि जो ना कह सके और उस ना पर टिका रह सके।

मनुष्य वह है जो ना कह सके।

हाँ, मनुष्य वह है जो ना कह सके। बात यह है कि हम पर जो माँगें होती हैं, व सब उचित हो तो नही हाती। मैं यदि अनुचित माग पर भी हाँ करता हूँ, तो यह मेरी चरित्रहीनता है—भले ही यह हा, मैं लिहाज म आकर कहूँ या दवाव मे आकर या दया के वशीभूत होकर। जहाँ मैं जाना नही चाहता, जब वहाँ जाता हूँ, जो करना नहा चाहता, वह करता हूँ, चाहे उसका कारण कुछ भी हो, मैं अपन व्यक्तित्व को हीन करता हूँ। यहो मैं कहना चाहता हूँ कि मेरा कत्तव्य है कि मैं दूसरो के लिए जो कर सकता हूँ करू, जरूर करूँ, पर जो नही कर सकता, नही करना चाहता, करना उचित नही समझता, उसके लिए ना कहूँ और चाहे जो हो इस ना को हाँ म न बदलने दू।

मैं एक हूँ और मुझसे अलग जो दूसरे है, वे अनेक है। यही व्यष्टि और समष्टि है। हमारे राष्ट्र के जीवनशास्त्र ने जो महान् खाज की है, वह है व्यष्टि और समष्टि की एकता—यद् व्यष्टौ, तत्समष्टौ—जो व्यष्टि मे है, वही समष्टि म है। मतलब यह हुआ कि मै अपने मे पूण होकर भी, अकेला होकर भी, समष्टि का, सार ससार का प्रतिनिधि हूँ और इस सुख की अनुभूति से जो मस्ती मन मे आती है, उसम झूमकर कहना चाहूँ, तो

यह सकता हूँ कि मैं ही ससार हूँ ।

यह क्या कोई साधारण बात ह ? ना, मैं इस अनुभव करता हूँ इस लिए इसका गौरव भी ग्रहण करता हूँ, क्याकि बाहरी दृष्टि से तो मैं इस विशाल ससार का एक अणु हू, एक जर्रा हूँ, जिसका कुछ भी महत्त्व नही, जिसको कोई भी ठुकरा सकता है, पर यह नया दृष्टिकोण तो मुझे अणु की जगह विराट लहर की जगह समुन्दर और हीन की जगह महान घोषित करता है । जी हाँ कितना सुख है इस नये दृष्टिकोण के अनुभव म !

हाँ इसम बहुत गौरव है, बहुत सुख है, पर क्या मैं इस गौरव और सुख का आनन्द लेकर ही रह जाऊँ । ना, हर गौरव अपने साथ कुछ उत्तरदायित्व, कुछ जिम्मेवारियाँ लेकर आता है । यदि हम इस उत्तरदायित्व को, इस जिम्मेवारी को अनुभव न करे, न निबाह, तो वह गौरव कुछ ही समय म क्षीण होने लगता है और फिर नष्ट हो जाता है ।

इस विचार की छाया मे मैं सोचता हू कि मेरा यह अधिकार है कि मैं अपने म समष्टि के, समाज के प्रतिनिधि होने का अनुभव करूँ और मेरा कत्तव्य है कि मैं इस गौरव के अनुरूप अपनी जिम्मेवारियाँ भी समझू और उन्ह निबाहूँ ।

मेरे अधिकार और मेरे कत्तव्य मुझे सब तरह की हीनताओ से, दूषणो से, कमियो से, त्रुटियो से, बुराइयो से बचने और जीवन की हर उच्चता की ओर बढने की प्रेरणा देते रह ।

क्या मै देशभक्त हू ?

• •

- रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के विरोध मे ब्रिटिश सम्राट द्वारा प्रदत्त अपनी 'सर' की अत्यन्त सम्मानपूर्ण उपाधि वापस कर दी।
- सुभाषचन्द्र बोस ने आई० सी० एस० की परीक्षा म प्रथम आन पर भी कलक्टर बनन से इनकार कर दिया और देश की स्वतन्त्रता की लडाई म कूद पडे, जहाँ बार-बार जेल जान के सिवा और कुछ मिलन वाला न था।
- चित्तरजनदास और मोतीलाल नहरू न अपनी लाखो रुपये की आमदनी की वकालत छोडकर, स्वेच्छा स गरीबी का, सादगी का जीवन स्वीकार किया।
- पुरुषोत्तमदास टण्डन न पजाब नशनल बक की शानदार मैनेजरी छोडकर एकदम फकीरी ले ली।
- सुकुमार-सलोना खुदीराम बास एक अँग्रेज को गोली मारकर फाँसी चढ गया।
- लाला मुशीराम ने अपनी हवेली भी दान कर दी और स्वामी श्रद्धानन्द के रूप मे अपना जीवन देश को अर्पित कर दिया।
- 1937 39 मे लोकप्रिय मन्त्रियो ने छह हजार की जगह पाँच सौ रुपये मासिक ही वतन लेना स्वीकार किया और पी० साम्बमूर्ति दो छोटे अगोछो के गाधी वेश मे ही मद्रास विधान सभा की अध्यक्षता करने की बात पर दृढ रहे।
- मेरी पीढी इस तरह के समाचार सुनते सुनते बडी हुई थी। ये समाचार अलग-अलग थे, अलग अलग क्षेत्रो के थे, पर इन सबका भावना-

त्मक रूप में एक ही अर्थ था—देश की स्वतन्त्रता के लिए त्याग करना, गुलामी के विरुद्ध जूझते हुए मर मिटने तक को तैयार रहना। मतलब यह था कि देश के लिए त्याग करना, बलिदान देना हमारा धर्म है। दूसरे शब्दों में, इसी धर्म का नाम था देशभक्ति।

भावना के इसी राज्य में लोकमान्य तिलक से शहीदे-आजम भगतसिंह तक बलिदान-संघर्ष का एक अध्याय लिखा गया और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी एवं विपिनचन्द्र पाल से श्रीमती ऐनी बेसेण्ट के द्वार होता हुआ गांधी जी तक लगभग, होमरूल-असहयोग-सत्याग्रह का दूसरा। 1942 में गांधी जी की जन क्रान्ति और सुभाष बाबू की राज्य क्रान्ति के रूप में जैसे दोनों ही अध्याय एक ही उपसंहार में पूर्ण हो गये।

और यह है 15 अगस्त 1947, देशभक्ति की जीवन-वल्लरी का महकता पुष्प। सदियों की गुलामी टूटी, भारत में स्वतन्त्रता का सूर्य उगा और लाल किला, संसद भवन एवं वाइसरीगल लाज पर एक साथ तिरंगा झण्डा फहरा उठा—'झण्डा ऊंचा रहे हमारा।'

अब आगे? प्रश्न छोटा-सा है, पर बड़ा पैना है, जैसे घटाटोप अंधेरे के भीतर छोटी-सी टॉर्च की रोशनी-रेखा हो—पतली-सी, पर अंधेरे को उधेड़ती-सी। यह प्रश्न हमें झकझोरता है और पूछता है—हमारी देश भक्ति की भावना जिस गुलामी-परतन्त्रता पर केन्द्रित थी, वह टूट गयी, अब आगे हमारी देशभक्ति का स्वरूप क्या है, लक्ष्य बिन्दु क्या है, प्रेरणा-स्रोत क्या है और उसकी निर्णायक कसौटी क्या है?

आश्चर्य है कि हमारे देश का संविधान इस प्रश्न पर मौन है, इसका कोई उत्तर नहीं देता। दूसरे शब्दों में, वह देशभक्ति की कोई व्याख्या, परिभाषा प्रस्तुत नहीं करता। यह आश्चर्य जलते कोयले की तरह क्षुब्ध करता है इस जानकारी से कि हमारे देश का दण्ड विधान राजद्रोह पर ध्यान देता है, पर उसकी सूची में देशद्रोह कोई अपराध ही नहीं है। सैनिक रहस्यों का शत्रु-देश के हाथ बेचना और किसी धनपति की तिजोरी से सोने के आभूषण चुराना उसकी दृष्टि में लगभग समान अपराध हैं—दोनों चोर हैं और बस चोर।

यदि कोई देश गुलाम है, तो वह कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता और

स्वतन्त्र है, तो ज्यादा दिन अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा नही कर सकता, यदि उसके नागरिका म देशभक्ति नही है। इसलिए आवश्यक है कि दश की नयी पीढिया के सामने देशभक्ति की व्याख्या स्पष्ट हो। 1952 मे जब पहले आम चुनाव हुए, तो मेरे मन म यह बात पूरे जोर से उठी कि इन चुनावा म प्रत्येक राजनतिक दल का यह कत्तव्य है कि वह जनता को अपनी नीतिया का परिचय दकर मह बताये कि वह दशभक्त है और इस प्रकार जनता को देशभक्ति का प्रशिक्षण दे। इस विचार की पृष्ठभूमि मे मैंने देश के अनक राजनीतिज्ञा, पत्रकारा और विद्वाना से बातचीत की और देशभक्ति की नयी परिभाषा क्या हो, इस पर तक वितक किया।

राजनीतिना म अधिकाश न मेरी वेचैनी को कोई महत्त्व नही दिया। और तो और, प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नहरू अपनी खनझनाती शली म बोले—"सारी उम्र दश का काम करते रहे। अब देशभक्ति क्या है, यह जानना शुरू कर रहे हैं जनाव !" मैं बरसा के अनुभव से उनके स्वभाव को, उनस बात करने के तरीके को जान गया था, इसलिए उन्ह बातचीत के मूड मे लाने के लिए मैंने कहा— पण्डितजी, ईश्वर के राज्य मे दर है अन्धेर नही, इस कहावत के अनुसार मैं अन्धेर नही कर रहा हू देर मे ही सही, पर उठा तो रहा हूँ एक जरूरी प्रश्न ही।"

सुनकर जरा गम्भीर हो गये नहरू जी, तब बोले—'मुल्क की खुश हाली वढाने म हिस्सा लेना ही दशभक्ति है।" बात पूरी हो गयी। मैंने साचा पण्डितजी के मन को देश म आर्थिक क्रान्ति का प्रश्न घेर रहा है, इस उत्तर म उसकी ही प्रतिध्वनि है।

राजनीतिज्ञो मे डाक्टर राधाकृष्णन् (तत्कालीन उपराष्ट्रपति) का उत्तर काम का था—"सकट के समय देश के नागरिका द्वारा मिलकर खतरे का मुकाबला करना ही राष्ट्रीयता की मुख्य कसौटी है। इसी मे देशभक्ति की भावना के वीज-अकुर ह।" मैंने सोचा—दाशनिक की सम्मति का स्वरूप यह बनता है कि शान्ति-काल म जो नागरिक राष्ट्र के शक्ति सचय मे सहायक और खतरे के समय शक्ति-सघष मे उद्यत है, वे ही दशभक्त हैं।

डाक्टर राधाकृष्णन की सूक्ति मैंने वचस्वी पत्रकार श्री इन्द्र विद्या-

वाचस्पति को सुनाई और उनसे देशभक्ति की प्रामाणिक परिभाषा देने का अनुरोध किया। उन दिनो वे दैनिक 'जनसत्ता' के सम्पादक थे। कुछ दिनो बाद उन्होने अपने एक अग्रलेख मे लिखा—"आम जनता के पास देशभक्ति की कोई कसौटी न होने का यह स्वाभाविक परिणाम है कि स्वार्थी लोग देशद्रोही को भी देशभक्त का नाम देकर जनता को गुमराह कर देगे। देश मे उठे बहुत से आन्दोलनो के बारे म यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि अगर इन आन्दोलनो के समय हमारे देश की जनता के पास देशभक्ति को परखने की कोई कसौटी होती, तो जनता उन्हे सहयोग देने के बदले उनका विरोध करती। यदि किसी प्रकार का विरोध जनता की ओर से न भी किया जाता, तब भी आम जनता की तटस्थता इन आन्दोलनो को शुरू म ही नष्ट कर देती।

देशभक्ति मे जनता के प्रशिक्षण की यह उपयोगिता बताकर उन्होने यह परिभाषा दी—"देश के आजाद होने के बाद से जो सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न देश के सम्मुख उपस्थित है वह इसकी खुशहाली और तरक्की से सम्बन्ध रखता है। इस हालत मे देशद्रोह उन सब कामो को माना जाना चाहिए जिनसे देश की उन्नति और समृद्धि के कामो मे रोड़ा अटकता हो। इस परिभाषा के अनुसार, एेसे सब काम देशभक्ति म गिने जायगे, जिनके द्वारा देश मे खुशहाली और तरक्की की बढ़ोतरी होती हो।"

पण्डित जवाहरलाल नेहरू, डाक्टर राधाकृष्णन और इन्द्र विद्यावाचस्पति की बातो को मिला दे, तो देशभक्ति की परिभाषा यह बनती है—जो नागरिक देश की समृद्धि, सुरक्षा और उन्नति म सहयोग देता है वह देशभक्त है और जो इनमे बाधा डालता है, वह देशद्रोही है।

परिभाषा ठीक है पर लगता है अभी स्पष्टता की और आवश्यकता है, क्योकि इस परिभाषा मे ऐसी सीधी-सरल कसौटी नही है जिस पर कसकर हरेक नागरिक यह परख ले कि वह देशभक्त है या नही। ऐसे प्रश्नो के समाधान मे अध्ययन मेरा सहायक नही होता चिन्तन और सम्यक् अनुभव ही मुझे सहारा देते है। मैं सोचता रहा, सहज भाव से प्रश्न पर विचार करता रहा और तब अनायास देशभक्ति की जो परिभाषा बनी, वह इस प्रकार है—

० देश मे व्यक्ति है, नागरिक है, परिवार है, जाति है, वर्ग है, धर्म-सम्प्रदाय है, वर्ण है। व्यक्ति का हित है, परिवार का हित है, जाति का हित है, वर्ग का हित है धर्म सम्प्रदाय का हित है, पर देश का भी तो हित है।

० जो नागरिक अपने, परिवार के, जाति के, वर्ग के और वर्ण के हित से देश के हित को अधिक महत्त्व देता है और दोनो हितो मे विरोध होने पर अपने, परिवार के, जाति के, वर्ग के धर्म-सम्प्रदाय के और वर्ण के हित का बलिदान कर देश के हित को साधता है वह देशभक्त है।

० इसके विरुद्ध, जो नागरिक देश के हित से अपने, परिवार के, जाति के, वर्ग के, धर्म सम्प्रदाय के और वर्ण के हित को अधिक महत्त्व देता है और दोनो मे विरोध होने पर अपने, परिवार के जाति के वर्ग के, धर्म-सम्प्रदाय के और वर्ण के हित का बलिदान न कर देश के हित का बलिदान करता है, वह देशद्रोही है।

० इस परिभाषा का स्वरूप यह भी है—गुलाम भारत मे देशभक्ति की कसौटी थी, स्वतन्त्रता के लिए कष्ट सहना, जेल जाना मार खाना, जमीन सम्पत्ति की जब्ती सहना और फासी चढना। स्वतन्त्र भारत मे देश-भक्ति की कसौटी है—अपना काम अपनी जगह पूरी ईमानदारी, पूरी मेहनत, पूरी योग्यता, पूरी स्वच्छता और पूरी लगन से करना।

० इस तरह हरेक कर्मठ मनुष्य देशभक्त है, चाहे वह इजीनियर, डाक्टर, सपादक, लेखक, दुकानदार, अध्यापक, विद्यार्थी, उद्योगपति, मजदूर, मन्त्री, विधायक, अफसर या कुछ भी है। इसके विरुद्ध, हरेक कामचोर, आलसी, शिथिल और बेईमान मनुष्य देशद्रोही है भले ही वह कुछ भी हो।

० देश का हरेक नागरिक इस कसौटी पर अपने को कसे और देखे कि वह देशभक्त है या देशद्रोही ? देश के प्रति बेईमान है या ईमानदार ? पवित्र है या पतित ?

० देश के हरेक नागरिक का कर्त्तव्य नम्बर एक है कि यदि वह दूसरी श्रेणी मे है, तो अपने को दृढतापूर्वक सुधारे, बदले, क्योकि देशद्रोही होकर जीने से तो कोढी होकर जीना कही श्रेष्ठ है।

जफर मियॉ के सैलून मे

• •

उस दिन शरीर भिन्नाया हुआ सा था और चाहते हुए भी किसी काम मे मन नही लग रहा था। तन-मन बासी हो रहे थे, पर जरूरत ताजगी की थी। मैं उठा और बाल कटाने के लिए जफर मियाँ के छोटे-से हेयर-कटिंग सलून म पहुँच गया।

जफर मियाँ एक दिलचस्प आदमी है, मेरा बहुत लिहाज करता है और मैं सदा उसका सहायक-साथी रहा हूँ। जब मैं पहुँचा, वह एक आदमी की हजामत बना रहा था और आरा चलाने वाले दो मजदूर इन्तजारी म बाहर बैठे थे।

मेरे दुकान मे पहुँचते ही जफर ने उस्तरा रख दिया। मेरे लिए उसने कुरसी बिछाई और बाहर की दुकान स चाय का प्याला मँगवाया। मैं चाय पीने लगा और जफर फिर हजामत बनाने लगा।

हजामत निपटी, तो मुझे लगा कि मेरा नम्बर है, पर जफर ने उन दो मजदूरो मे से एक को बुला लिया और वह उसके बाल काटने लगा। तभी आ गया उसका सहायक और वह दूसरे मज दूर की हजामत बनान म लग गया।

अब मैं बैठा हूँ कुरसी पर और देख रहा हू कि जफर मियाँ उस मजदूर के बाल काट रहे हैं। मैं मजदूर को देखता हूँ और सोचता हूँ—यह शायद पाच-सात दिन से नही नहाया। बालो मे उसके रेत भरा है और बुरादा भी। गरदन उसकी काली-चीकट हो रही है। और तो और मुह पर मैल की परतें जमी हैं, पर जफर बडी लगन से उसके बाल काट रहा है, जसे यह मजदूर नूरजहाँ का सगा भाई हो।

कभी कघे से नापता है, कभी कैंची से और फिर फुरक फरक दो चार कैंची मारता है और मैं देख रहा हूँ कि जफर बालो मे इतना लीन है कि उसे यह याद ही नही कि मैं भी यहा बठा हूँ और उसे मेरे भी बाल काटने हैं। वह बालो की कटाई को अपने ज्ञान और कला की चरम सीमा तक पहुँचाना चाहता है। उसका ध्यान इस पर नहीं है कि यह मजदूर इस कारीगरी को नही समझ सकता।

वह यह भी नही सोचता कि इस मजदूर की स्थिति ऐसी नही है कि वह इन बालो का ठीक रख सके।

मैं सोच रहा हूँ—सभवत यह मजदूर हजामत के बाद आज नहायगा और बालो मे तेल डाल, कघा करेगा, पर कल इनमे फिर यही धूल और बुरादा भर जायेगा और ये ऐसे ही उलझ जायेंगे, जसे आज उलझे हुए ह।

मैं यह सब सोच रहा हूँ, पर जफर इनमे से कोई भी बात नही सोच रहा। वह अपनी धुन मे है। वह कघा चलाता है, पर नहीं चलता—उलझे बालो म वह अटक जाता है। जफर बाल सुलझाता है और कघा बढाता है।

कभी वह झुककर बालो का मिलान देखता है, कभी उभरकर, कभी इधर और कभी उधर। एक एक बाल पर, एक-एक ढलाव पर, एक एक मिलान पर जफर की निगाह है, जैसे कोई इजीनियर किसी पुल के खम्भो का मिलान देख रहा हो।

या कटिंग पूरी हुई और तब कैंची का चार बार ताल के साथ खाली ही चुकर-चुकर चला, जफर ने कहा—लो सरकार, कट गये आपके बाल।

अब उसने उठाया ब्रुश और वह जुटा हजामत पर। हजामत मे भी वही तल्लीनता। एक हाथ सीधा, तो एक उल्टा और तब यह देखभाल कि कही कोई कील तो नही रह गयी। कील ही नही, कलम मे लेकर मछो की छँटाई तक सब काम उसने पूण सुदरता से किय।

बीस मिनिट से ज्यादा मैं जफर की इस तल्लीनता को देखता रहा। सच यह है कि जफर उस मजदूर के बालो मे लीन था और जफर म म। देखते देखते मैं भावो से भर उठा था, यहाँ तक कि हजामत की ऊँची कुरसी पर आने को जब मैं उठा, तो इतना भाव विभोर था कि मैंने जफर को अपन

मे दबोच लिया ।

पम देवर जब वह मजदूर चला गया ता मैने वहा—' जफर मियाँ, तुम ता उस मजदूर वो एम लिपट कि जस जिले वा कलक्टर ही तुम्हारी दुवान पर आ वठा हो।"

जफर न जो जवाब दिया, उससे आगरा वा पेठा और दिल्ली का सोहन हलुवा दोना फीके पड गय। वह बोला—"बाबू जी, मेरे लिए तो जा इम कुरसी पर वठता है, वही क्लिट्टर है।'

म दो जफ़रा के बीच घिर-सा गया। एक जफर वह, जो मेरी बराबरी मे खडा मरी ही हजामत बना रहा है और एक वह, जो अब कोई हज्जाम नही, मेर निवट जीवन-वद की एक ऋचा है जो मेरे भीतर घुमड तो रही है, पर अभी भाषा नही पा रही ।

पिछले ही महीने एक मित्र का मन पत्र मे लिखा था—' विकास वा माग यह है कि मनुष्य के हृदय म श्रद्धा जागती है, श्रद्धा का पुत्र है विश्वास, विश्वास की पत्नी है एकाग्रता एकाग्रता वा पुत्र है श्रम, श्रम की बहन है सरसता और यह सरसता सवग्राही है—सबको अपन म ले लेती है, प्रतिकूल वो अनुकूल बनाकर और अनुकूल को आत्मीय का रूप देवर। इसका अर्थ होता है मानव के भीतर 'पर' का जागरण।'

"विनाश का माग यह है कि मनुष्य के हृदय मे तृष्णा जागती है। उसका पुत्र है अविवेक, इसकी पत्नी है अहमिका और इन दोनो का पुत्र है दप, दप का पुत्र है आग्रह, जिसकी पत्नी है कठोरता, जो सवसहारी है—सामञ्जस्य और समन्वय को बिखराकर अनुकूल को प्रतिकूल और प्रतिकूल को शत्रु का रूप देने म आतुर और प्रवीण। इसका अथ होता है—मानव के भीतर 'स्व' वा जागरण।"

जफर मियाँ की कची मेरी खोपडी पर अपनी मस्त अठखेलियाँ कर रही है और मेरी खोपडी के भीतर यह सब घूम रहा है।

मै सोच रहा हूँ—यह सब जीवन-वद की उस ऋचा की व्याख्या हो सक्ती है, स्वय वह ऋचा तो नही है। दिमाग़ की नसा म घूमते रक्त की चाल कुछ तेज हो गयी, जस उस ऋचा की खोज मे उतावली हो उठी हो।

मुझे याद आ गये स्वर्गीय श्री चिन्तामणि घोप। जब व स्वग सिधार,

तो एक बहुत बडे प्रेस के स्वामी थे, पर यह बात तब की है, जब उन्होने अपनी बैठक म इस प्रेस का एक छोटे-से रूप म आरम्भ ही किया था ।

महान पत्रकार स्वर्गीय श्री रामानन्द चटर्जी के जीवन-विकास का भी तब आरम्भ ही था और बाद म विश्वविख्यात पत्र 'माडन रिव्यू' को वे तब आरम्भ ही कर रहे थे । घोष बाबू के प्रेस म उन्होने आठ पन्ने की एक छोटी-सी पुस्तिका छपाई, जो 'माडन रिव्यू' के सम्बन्ध म लोगा का मुफ्त भेजी जानी थी । इसमे प्रूफ की कुछ भूलें रह गयी । चटर्जी बाबू ने उन्हे देखा, तो बोले—"कोई बात नही, यह एक विज्ञापन ही तो है ।"

घोष बाबू न तभी उन भूला को दखा और बण्डल को अपन पास रख लिया । बाले—"तीन दिन बाद इसे लीजियेगा, मै अभी आपको न दूगा ।"

तीन दिन बाद चटर्जी बाबू को जो बण्डल मिला, उसमे एक भूल न थी । आश्चय से उन्होने पूछा, तो पता चला, दो हजार पुस्तिकाएँ दुबारा छापी गयी है ।

"आपने या ही इतना नुकसान उठाया । मामूली विज्ञापन थे, बट जाते ।" चटर्जी बाबू ने कहा, तो घोष बाब बोले—"किसी का मामूली विज्ञापन हो या रिसच की पुस्तक, मेरे लिए तो बराबर है । आपका तो यह विज्ञापन है बँट जाता, कोई बात न थी, पर मेरा तो यह घर-घर विज्ञापन करता कि चिन्तामणि के प्रेस मे भले रह जाती है ।"

मुझे ताजगी की एक फुरैरी-सी आ गयी, पर जीवन-वेद की वह ऋचा तो अब भी मेरे भीतर ही उमड घुमड रही थी, बाहर वाणी मे न आ पायी थी ।

मन भी अजब हवाई घोडा है । दो विशिष्ट पुरषो की स्मति मे डुबकी लेता-लेता एक पुरानी स्मति मे जा कूदा । मै तब छोटा ही था और उस दिन सुबह-ही-सुबह कही बाहर जा रहा था कि पिताजी ने पास बुलाकर मेरे माथे पर जरा-सा चन्दन लगा दिया ।

बोले—"बिना चन्दन लगाये, सुबह-ही-सुबह कभी बाहर नही जाया करते ।'

मेरे पूछने पर बोले—"प्रात काल सूने मस्तक के ब्राह्मण का दशन अपशकुन है । कोई देखेगा, तो मन ही मन तुझे कोसेगा ।"

इसके कुछ दिन वाद मैं और पिताजी एकदम प्रात काल किसी काम के लिए घर से चले, तो गली मे झाड़ू लगाता भगी मिला। दखकर बोले—"लो वेटा, याड़ू लिय सामन भगी आता है, बस कारज सिद्ध ही समझो।"

बाद म किसी दिन उन्हाने बतलाया था—"ब्राह्मण का कम है प्रात - काल स्नान करके भजन-पूजन करना और भगी का कम है प्रात काल झाड़ू लेकर सफाई करना। जो अपना काय न करे, वह कमहीन और प्रात काल कमहीन का दशन अशुभ, इसलिए सूने माथे के ब्राह्मण का दशन अपशकुन और झाड़ू लगात भगी का दशन शुभशकुन माना गया है।"

मैं स्मृतिया की सरिता मे ही तर रहा हूँ और जफर मिया अपना काम भी पूरा कर चुका है—"लो सरकार, बन गयी हजामत।" उसने कहा, तो मैं चौक सा पडा, पर यह क्या कि मैं इधर उठ रहा हूँ उस कुरसी स और उधर सामन उतरी आ रही है जीवन वद की यह ऋचा—

हरक नागरिक मे अपने काम के लिए चाव, श्रम के प्रति श्रद्धा और पेशे के प्रति इमानदारी के भाव का जागरण ही राष्ट्र की जीवन शक्ति का सर्वोत्तम मापदण्ड है।

—

माँगी हुई चीज

• •

'कल्याण' के सम्पादक श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार (अब स्वर्गीय) बहुत ही सात्त्विक और उदार विचारों के सहृदय सज्जन है। उन्हें दूसरों का दुख प्रभावित करता है और उसे दूर करने में अपना हिस्सा बाँटकर वे सुखी होते हैं। संक्षेप में, 'वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड पराई जाणे रे' के वे श्रेष्ठ प्रतिनिधि है। मुझे बहुत वर्षों से उनका स्नेह भी प्राप्त है और मेरे द्वारा संपादित 'नया जीवन' (मासिक) को वे पसन्द करते है, यह भी मैं जानता हूँ।

इस पृष्ठभूमि में मैंने एक बार उन्हें 'कल्याण' के कुछ ब्लाक भेजने के लिए लिखा। उनका जो उत्तर आया, उसे पढ़कर मुझे ऐसा लगा कि मैं बहुत ऊपर से गिर गया हूँ और मेरी पसलियाँ टूटी नहीं, तो दचक जरूर गयी हैं। उन्होंने लिखा था—"कल्याण के ब्लॉक बाहर किसी को न देने का संचालकों ने नियम बना लिया है। इसका कारण यह है कि इधर दो-तीन वर्षों में कई जगहों से ब्लाक लौटकर नहीं आये, खो गये और टूट-फूट गये। आशा है कि आप इसके लिए क्षमा करेंगे।"

क्या मेरे मन को इस उत्तर से इसलिए धक्का लगा कि मुझे ब्लॉक नहीं मिले? या इसलिए कि मैंने मान लिया कि श्री पोद्दारजी बड़े कृपण निकले, जो ब्लाक देने से इनकार कर दिया? दोनों प्रश्नों पर मैं 'हाँ' नहीं कह सकता, क्योंकि मेरा मन इतना छोटा कभी नहीं हुआ कि किसी चीज के न मिलने पर धक्का खा जाऊँ और पोद्दारजी के सम्बन्ध में मेरी निष्ठा इतनी हलकी नहीं कि इस उत्तर से उन्हें कृपण मानने की मूर्खता कर सकूँ।

फिर बात क्या है? इस उत्तर के दर्पण में मुझे अपने महान राष्ट्र की

हीन वत्ति का एक ऐसा प्रचण्ड प्रदशन मिला कि मैं भिन्ना गया। यह हीन वृत्ति है— दूसरे से माँगी हुई चीज़ के प्रति ईमानदारी की भयकर कमी।

ऐस बहुत कम लोग हागे, जिन्हे कभी किसी दूसरे से कोइ चीज माँगनी न पडी हो और दूसर से समय पर चीज़ माँगना कुछ बुरा भी नही है, क्योकि इस मागने म ही यह भी है कि हम दूसरा की जरूरत क समय अपनी भी चीज दे पर हमम एसे बहुत कम लोग हैं, जो उस माँगी हुई चीज़ क प्रति ईमानदार हा। यह ईमानदारी दो तरह की है। पहली यह कि हम मागी हुई चीज़ को अपनी चीज़ स भी ज्यादा सावधानी से वरतें रखें और दूसरी यह कि काम होते ही, सब काम छोडकर पहले उसे लौटायें ! फिर यह ईमानदारी माँगी हुई चीज़ के साथ ही नही, हर वादे के साथ नत्थी है।

स्वर्गीय प्रेमचन्द जी के साथ मेरा सम्बन्ध पिता-पुत्र मधुर जसा था। एक बार मैन उनसे अपने एक विशेषाक के लिए कहानी मागी। उत्तर म उन्होने लिखा—"कई सम्पादकों न मुझस कहानी मँगाई और पारिश्रमिक के रुपये भेजने का वचन दिया। मैंन उस वचन के भरोसे पर उतने ही रुपयो के खच का प्रोग्राम बना लिया, पर रुपय नही आये, बारम्बार लिखने पर भी नही मिले और बहुत तक्लीफ हुई। इसलिए अब मैंने रुपय लेकर कहानी भेजने का नियम बना लिया है।"

वही दूसरे के प्रति ईमानदारी बरतने की बात ! बालको की तरह भोले और विश्वासी प्रेमचन्दजी मे यह काइयापन कहाँ स आया ? कौन ज़िम्मेदार है इसके लिए ?

दूसरे महायुद्ध के दिनो की बात है। एक बार मैं आचाय चतुरसेन शास्त्री से मिला। बाता-बातो मे मैन उनसे पूछा—"आपकी 'अक्षत' के बाद की कहानियाँ कहा है ?" बोले— कटिंग्स के रूप मे एक फाइल म पडी हैं। काग़ज़ का मिलना सुगम हो, तो किसी प्रकाशक को दूगा।

मैंने कहा— आपकी कहानी-कला का अध्ययन करने के लिए मैं एक बार उन्हे पढ़ना चाहता हूँ।"

ज़रा रूखे-से होकर बोले— आप यही पढ़ सकते हैं उन्हे। ले जाने के लिए तो मैं दूगा नही।"

उसी दिन मैंने अपनी डायरी म लिखा था—'शास्त्री जी की इस रुखाई

जब वे बीमार हों।

• •

आपके कोई मित्र बीमार हैं और आपके सम्बन्धों का तकाजा है कि आप उन्हें देखने जायें। देहाती कहावत है कि सुख में चाहे दूर रहे, पर दुख में दूर न हो! ठीक है आपको जाना ही चाहिए, पर क्या आप समझते हैं कि आपको जाने से पहले कुछ भी सोचने की जरूरत नहीं है? यदि आप इस पर हां कहेंगे तो भले ही आप नाराज़ हो जायें, मैं कहूंगा कि जब ईश्वर के यहां अक्ल बंट रही थी, आप काफी पिछली क़तार में थे।

अच्छा, आप अपने मित्रों की बीमारी का समाचार पा, उन्हें देखने क्यों जाना चाहते हैं? बीमारी की वजह से वे कुछ तमाशा तो बन नहीं गये कि उन्हें देखकर आपको कुछ नया लुत्फ आये। वे ज्यों के त्यों हैं, बल्कि कुछ कुम्हलाये हुए, परेशान से ही होंगे। फिर आप भी एक भले आदमी हैं, उस बादशाह जैसा शौक तो आपको न होगा, जो आदमियों को भेड़ियों के झुण्ड में फेंककर तमाशा देखा करता था।

हूँ, आप अपने मित्र से हमदर्दी प्रकट करने, उसका दुख बटाने के लिए वहां जाना चाहते हैं। यह बहुत अच्छी बात है और इसके लिए मैं आपकी प्रशंसा करूंगा, पर इस हालत में तो यह बात जरूरी है कि आप जाने से पहले कुछ नहीं काफी सोचें समझें और तब वहां जायें, क्योंकि बिना सोचे-समझे यदि आप जायें, तो बहुत मुमकिन है कि उनका दुख बटाने के बदले बढ़ा दें।

सोचने की सबसे पहली बात यह है कि आप वहां किस समय जायें?

बीमार आदमियों को रात में ठीक नींद न आना मामूली बात है। इसलिए मुमकिन है कि आपके मित्र को भी रात ठीक नींद न आयी हो और

रात बीतते न-बीतते ही वे सोये हो। इस हालत में यदि प्रात पांच बजे अपने घूमने के समय में आप यह सोचें कि अपने बीमार मित्र से भी मिलते चलें, तो यकीन कीजिए कि यह उनके लिए एक मुसीबत होगी। आपके पहुंचने पर वे हड़बड़ाकर उठेंगे और ऐसी हड़कल का सामना करने को मजबूर होंगे, जो उनकी हड्डियों तक को बींध दे। भरी दोपहरी में वहां जाने पर और रात में देरी से जा धमकने पर भी यही खतरा है, इसलिए अपने बीमार मित्र के पास जाने में आप अपना नहीं, उनका ही सुभीता अपने ध्यान में रखिए।

दूसरी बात सोचने लायक यह है कि आप वहां जाकर किस तरह की बातें करें और किस तरह की बातें न करें ?

हरेक बीमारी किसी न किसी कारण से होती है और ये कारण मामूली हैं—हरेक के लिए समान। इस हालत में बीमार पर यह जोर डालना कि वह आपको, यानी हरेक आने वाले को, अपनी बीमारी का इतिहास सुनाये, बहुत बड़ी ज्यादती है, माफ कीजिए, बेवकूफी भी है।

आपके लिए इतना ही काफी है कि आप यह जान लें कि आपके मित्र को क्या तकलीफ है और ज्यादा से ज्यादा यह भी कि कब से है ? आपको यह जानना मुनासिब है कि इलाज किसका है और उससे क्या लाभ हो रहा है ? यह आप स्वयं बीमार से न पूछकर, घर के दूसरे लोगों से मालूम कर लें, तो ज्यादा ठीक होगा।

इस सिलसिले में अहमकपन की बात यह होगी कि आप यह जानने के बाद भी कि किसी वैद्य, डॉक्टर या हकीम का इलाज हो रहा है, अपनी दवाएं बतायें कि यह इलाज करो, वह इलाज करो! इस मामले में ज्यादा से ज्यादा गुंजाइश यह है कि यदि मौजूदा इलाज से लाभ न हो रहा हो, तो आप किसी ऐसे डाक्टर, वैद्य का नाम उन्हें बता दें, जो आपकी राय में तथा अनुभव में, इस रोग के लिए होशियार हो।

जो रोग आपके मित्र को है, वह आपकी जानकारी में पहले भी दूसरे लोगों को हो चुका होगा। यह भी तय है कि उस रोग में उनमें से बहुत से मर भी गये होंगे, पर अब क्या आपके लिए यह उचित होगा कि उन मरे हुओं की कहानियां आप अपने बीमार मित्र को सुनायें ? इससे नुकसान के

सिवाय लाभ क्या है ?

रोगी का कमजोर होना स्वाभाविक है पर यदि आप बार-बार अपने मित्र की कमजोरी उन्हें याद दिलायें, तो यह आपके नादान दोस्त होने का ही सबूत होगा।

आप अपने बीमार मित्र के पास बैठकर उनके हित का जो सबसे बड़ा काम कर सकते हैं वह यह कि आप इस तरह की बातचीत करें कि आपके मित्र हंस और उतनी देर अपनी बीमारी को भूल रहें। यहां एक खतरा है और वह यह कि आप इस बातचीत में इतने लीन हो जायें कि आपके मित्र न भोजन कर सकें न विश्राम और जब आप वहां से उठें, तो वे यह महसूस करें कि रोग अब उन पर और भी छा गया है।

बीमार मनुष्य के घरवालों पर पहले ही बहुत काम बढ़ा रहता है। अब यदि आप भी चाय, पान, सिगरेट आदि का अपना काम उन पर डाल दें, तो यह क्रूरता ही होगी। हां, यदि उतने समय में बीमार की सेवा का कार्य अपने जिम्मे लेकर, बाजार से जरूरत की चीजें लाकर और दूसरी तरह उन्हें कुछ हलका कर सकें, तो उनके लिए आपका आना उपयोगी हो सकता है।

इस तरह अपने बीमार मित्र के पास जाने से पहले ही बहुत कुछ सोचने की जरूरत नहीं है वहां पहुंचकर भी यह सोचने की जरूरत है कि आपके आने से बीमार और तीमारदार पर किसी तरह का बोझ तो नहीं पड़ा ?

जब उनकी चीज पसन्द आये

• •

भाई नेमचन्द जैन साहू-जन उद्योग क प्रमुख स्तम्भा म है और उनकी रुचि कलात्मक ह । उनके जीवन का एक विरोधाभास मुझे बहुत प्रिय है कि वे व्यवसाय के सम्बन्ध मे बोलत है, तो सधकर साधकर और निजी सम्बन्धा म बोलते है ता खुलकर खिलकर। सक्षेप मे, उनसे मिलकर बहुत आनन्द आता ह और मैं जब भी उनके पास जाता हूँ तो गपशप का भरपूर सुख उठाता हूँ । यह गपशप कभी कभी उनके दफ्तर म भी जम जाती है । एस अवसरा पर वे गपशप के ठीक बीचमबीच भी अपने कार्यालय का कम करते रहते ह, उनकी व्यवस्था है कि उसमे बाधा नही पडती ।

उस दिन भी ऐसी ही गपशप गोष्ठी हो रही थी । बातें चलती रहती और कागज आते जाते रहते । कागज के आते ही वे अपनी पेंसिल उठाते, उसका पिछला भाग जरा दबाते, पेंसिल की जीभ बाहर निकल आती, व कागज पर आदेश लिखते, फिर जरा दबाते, वह जीभ भीतर छुप जाती और पेन्सिल रख देते ।

उन्हे ऐसा करत बहुत बार देखा था और दूसरा को भी, पर उस दिन उन्हे देखा, तो मुझे मेरी एक पुरानी समस्या का समाधान मिल गया । मेरी समस्या यह थी कि लेटे-लेटे कोई पुस्तक पढता हूँ और पढते-पढते उस सम्बन्ध मे कोई विचार आता ह, तो उसे पुस्तक के हाशिये पर लिख देता हू या फिर समथन विरोध के चिह्न ही उस पर लगा देता हूँ ।

इस काय मे मेरा फाउण्टेन पेन मुझे बहुत तग करता है, क्योकि उसे बार-बार खोलना-बन्द करना पडता है, तो पढने की एकाग्रता खण्डित होती है और खुला छोड दो, वो सूख जाता है । भाई नेमचन्द जैन का पेन्सिल प्रयोग

देखकर मुझे सूझा कि जो काम मैं पेन से लेता हूँ, वह इस पेन्सिल से लूँ, तो यह दिक्कत हल हो जाती है, क्योंकि पेन को खोलने-बन्द करने में दोनों हाथ लगाने पड़ते हैं और पुस्तक रखनी पड़ती है, पर पेंसिल एक ही हाथ से खुल भिड़ जाती है।

"देखूँ ज़रा आपकी पेन्सिल ?" मैंने नेमचन्द जी से कहा और पेन्सिल को हाथ में लेकर कई बार खोल भेड़कर देखा। हाँ, यह ठीक है, मैंने सोचा और तब उनसे पूछा—"यह कहाँ मिलती है भैया ?"

'क्या, आपको ज़रूरत है इसकी ?" उन्होंने पूछा, तो मैंने सरल-सुभाव अपनी समस्या उन्हें बताई और पेंसिल को यथास्थान रख दिया, पर तभी नेमचन्द जी ने उसे उठाकर मेरी ओर बढ़ाया—"लीजिए भाई साहब, यह आपको भेंट है।"

सुना, तो मैं चौंका, क्योंकि उनकी पेन्सिल नहीं, मेरी मूर्खता ही अब मेरे सामने थी। मैंने बहुत मना किया, पर वे न माने और वह पेन्सिल मुझे लेनी पड़ी! यह तब की बात है, जब भारत में इस तरह की पेंसिलों का निर्माण आरम्भ नहीं हुआ था और ये विदेशों से आती थीं और विशिष्ट लोग ही इनका उपयोग करते थे।

महात्मा भगवानदीन की एक प्रार्थना है कि 'हे भगवान्, मैं रोज भूल करूँ, पर मेरी वह भूल नयी हो, कभी भी पुरानी न हो।' बड़ी अर्थपूर्ण है यह प्रार्थना कि मनुष्य जो भूल आज करे, उसे फिर कभी न दोहराये और इस तरह दिन प्रतिदिन दोष रहित जीवन की ओर बढ़ता रहे। मनुष्य की परेशानी ही यह है कि वह एक ही भूल को बार-बार करता है और यह जान कर भी कि इसे करना ठीक नहीं है, उसे कर बैठता है, उससे बच नहीं पाता। यह उसके असंयम का और दृढ़ निश्चय की कमी का प्रमाण है।

मैं भी उस दिन इसी कमज़ोरी का शिकार हो गया। लखनऊ में बन्धु-वर श्री तेलूराम एम एल सी (अब स्वर्गीय) के साथ ठहरा हुआ था। सुबह ही सुबह हजामत बनाने बैठा, तो मेरे पास शीशा नहीं था। उनसे लिया। बड़ा नन्हा मुन्ना-सा शीशा। मैं हजामत का सामान जिस डिब्बे में रखता हूँ, उसमें चौड़ाई की कमी के कारण बाज़ार का कोई शीशा नहीं समाता, पर देखा, तो यह शीशा मेरे डिब्बे में एकदम फ़िट।

अचानक पूछा—"भाई साहव, ऐसे शीशे यहाँ लखनऊ मे मिलते है ?"

उन्होंने मरे प्रश्ना की तडातडी को मजाक समझा। बोले—"जैसा मैं छोटा हूँ, वसा ही मेरा शीशा है। आप इस शीशे का नही, मेरी गरीबी का ही मजाक उडा रहे है।"

सुनत ही मुझ पर डबल नेप का झापड पडा। एक शीशे के बारे म उतावलेपन की लाज का, दूसरा अपने मित्र की गलतफहमी का और मुझे कहना पडा कि ना, ना, यह वात नही है, वात सिफ यही है कि मुच खोजने पर भी इस डिब्बे के लायक शीशा नहीं मिला और यह इसमे फिट है।

तेलूराम जी मरे प्रति सदा ममतापूण रहे है और ममता होती है सरल-विश्वासी, ता गलतफहमी तुरन्त साफ हुई, पर गलती सामने आ खडी हुई। बोले—"यह शीशा आप ले लें, मुझे इसकी जरूरत नही है।" मैंने दृढता से इनकार कर दिया और हजामत के वाद शीशा उनकी मेज पर रख दिया। शाम को मेज पर मेरा ध्यान गया, तो शीशा वहा नही था। मुझे शक हुआ और देखा तो सचमुच शीशा मेरे डिब्बे मे करीने से रखा हुआ था।

मैंने उसे निकालकर फिर मज पर रख दिया और उस दिन सुबह तक वह वही रहा, जिस दिन शाम को मैं घर लौटा, पर घर आकर सुबह ही सुबह हजामत के लिए डिब्बा खोला, तो भाचक ! अरे, वह शीशा तो इसी म रखा है ! स्पष्ट है कि मेरे लिए उस शीशे की उपयोगिता भाई तेलूराम जी जान चुक थे और यह भी कि मैं राजी से इसे नही लूगा, ता उन्होने चलते समय आख बचाकर इसे मेरे डिब्बे मे रख दिया।

वह शीशा अब मेरे पास है और जब भी मैं हजामत बनाने के लिए सामने रखता हूँ, मेरे मन मे आ जाता है यह विचार कि दूसरे की चीज हम देखें, पसन्द करें, उसकी प्रशसा भी करें, पर उसके साथ अपनी लालसा को इस तरह न जोडें कि दूसरे को वह चीज हमार सामने परसने को मजबूर हाना पडे। हममे लालसा हो, पर उसके साथ इतना सयम भी हो कि हम उसकी पूर्ति के लिए उचित समय और उचित स्थान की प्रतीक्षा कर सकें।

इस सयम से अभाव म यह लालसा, लिप्सा का रूप धारण कर किस सीमा तक कुरूप हो सकती है, यह मैंने कभी सोचा ही न था, पर उस दिन यो ही यह बात सामन आ गयी। मैं उस दिन अपने एक मित्र के सुसज्जित

बैठकखाने मे बैठा बातें कर रहा था। उनकी पत्नी और लड़की भी बैठी थी। मित्र ऊँचे सरकारी अधिकारी हैं और लड़की बी ए में पढ़ती है।

तभी आ गये एक दूसरे सरकारी अधिकारी अपनी पत्नी के साथ। नमोनमः के बाद बातचीत शुरू होने ही वाली थी कि वह लड़की उठकर आगन्तुक महिला के पास जा बैठी और उसकी साड़ी को हाथ से छूकर बोली—'आँण्टी जी, यह साड़ी आपने कहाँ से खरीदी है ?"

उत्तर मिला— यहीं राजेन्द्र एण्ड सन्स के यहाँ से ली है।"

सुनकर लड़की का मुंह फूल गया और गुनगुनाते स्वर में उसने अपनी माँ से कहा— 'ममी, तुम तो कहती थी कि ऐसी साड़ी कहीं मिली ही नहीं, पर आँण्टी जी तो यह यहीं से लायी हैं।"

माँ ने बात को तरह देते हुए कहा— जब मैं बाजार गयी तब तो थी नहीं, बाद में आ गयी होगी—अब ला दूंगी किसी दिन।"

लड़की की गुनगुनाहट में रुदन के स्वर गूंज उठे—'अब क्या ला दोगी, खाक, लाकर देनी होती, तो पहले न ला देती। मैंने कितनी बार कहा कि मैरून कलर की हैण्डलूम साड़ी क्लास में कई लड़कियाँ पहनकर आती हैं, पर आपको मेरी इज्जत का ख्याल ही कहाँ है।"

माँ ने बहलाया, आण्टी ने सहलाया पर बेटी का मल्हार बरसा, तो बरसता ही रहा। अन्त में ऊबकर बाप ने डाँटा, तो बेटी धमधम पर पटकती भीतर चली गयी। बातों का रसभंग हो गया था और वातावरण भारी हो उठा था। कुछ देर समय को यों ही धकियाकर मैं उठा, तो वे पति-पत्नी भी साथ हो लिये। कोठी से बाहर आते ही आण्टी जी बोली—"आज यह पाठ खूब पढ़ा कि मनहूसों के घर जाना हो, तो कभी अच्छे कपड़े न पहन। जी में आया था कि वहीं साड़ी निकालकर लड़की के सिर पर फेंक मारूँ और चुपचाप चली आऊँ, पर इनका लिहाज कर गयी।" लड़की की बात-चीत मुझे भी अच्छी न लगी थी, पर उसकी कुरूपता का गहरा रंग आण्टी जी की बात सुनकर ही मुझे अनुभव हुआ।

भाई नेमचन्द जैन की पन्सिल, बाबू तेलूराम जी का शीशा और ड्राइंग-रूम की यह बातचीत, अलग अलग तीन होकर भी एक हैं कि हम दूसरों के पास अच्छी चीजें देखकर अपने अभाव को इतना ऊँचा न उठा दें कि हमारे व्यक्तित्व का सद्भाव ही नीचा हो जाए।

विद्यावती के दो बेटे

• •

श्रीमती विद्यावती कौशल का छोटा लडका है फालू। यह कोई उसका नाम नही। नाम तो है अशोक, पर हम कहते है उसे फालू, तो यह हुआ उपनाम। अवस्था है पाँच वष, पर वह अभी से पूरा 'लोग' है—काम म, चतय म, समय म, बातचीत मे और भोजन मे।

वह अकेला ही वहुत कुछ है, बालक भी, बूढा सलाहकार भी, तरुण सेवक भी। अजीव बालक है वह। अँधेरी रात मे दो बजे उसे गहरी नीद स जगाकर कहिए कि तबियत खराब है बेटा, तो तुरन्त कहेगा कि डाक्टर को बुला लाऊँ? और जब तक उसकी बात पूरी हो कि वह चलने को तैयार दिखाई देगा।

क्या यह बालक का उत्साह ही है? ना, वह उस अँधेरी रात मे अपने घर स कई फर्लांग दूर डाक्टर के बँगले पर चला जाएगा और उसे जगाकर, पूरी बात समझाकर ले आयेगा। रास्ते मे वह इतना सावधान रहेगा कि देखकर सोचना पडे कि यह मोर्चा पर काम करने के लिए ही जनमा है क्या?

1948 की बात है। मसूरी म हम तीनो घूमने चले। बसन्त सिनेमा के सामने से केमिल्स बक सडक पर चढे कि पास ही है बच्चो का खेलघर। क्या दखता हू, एक नौकर किसी ऊचे परिवार के दो बालको को लिये खडा है। बालक 8 10 वष के, स्वस्थ, माटे ताजे। नौकर उन्हें कह रहा है कि 'जाओ, खेलघर म झूलो-खेलो', पर व नही जात। इसी के लिए वे घर से आये है, नौकर उन्हे उकसा रहा है, सामन ही उनसे छोटे छोटे बालक खेल-किलक रहे हैं, फिर उनमे झिझक क्यो है?

मैं ठिठक गया, देखता रहा, पर वे बालम नहीं बढ़े। तब आगे आ मैंने उस नौकर से कहा—'भैया जब तुम घर पहुँचो, तो इनकी माँ से कहना कि एक खद्दरवाला मिला था। उसने आपको नमस्ते कहा है और यह सन्देश भेजा है कि आप माँ बन गयी, पर आपको माँ बनना नहीं आता। अभी तक देश गुलाम था, सो निभ गयी, पर अब तो देश स्वतन्त्र है। सम्भव है अनजान माएँ, पकड़ी जाने लगें, इसलिए कृपा कर आप सावधान रहें।"

नौकर की आखों में गरमी आ गयी—"क्या आप ऐसी बात कहते हैं?"

"अरे भाई, वे समझदार माँ होतीं, तो उनके बच्चे इतने डरपोक न होते कि खेलघर में जाते हुए भी घबरायें?" मैंने कहा।

"बच्चे तो बाबू साहब, सभी के झिझकते हैं। क्या आपका नहीं झिझकता?" नौकर ने मुझे एक ललकार-सी दी।

मैंने फालू की तरफ़ देखा, वह खेलघर को ताक रहा था। सिसकारी सी देते हुए मैंने कहा—'फालू, हम घूमने जा रहे हैं, तू जा झूल-खेल, हम लौटते समय रात में तुझे ले लेंगे।"

सुनते ही फालू दौड़ गया और लम्बे तख्ते पर उचककर जा चढ़ा। नौकर झेंपा-सा, कि हम चले। फालू की किलकारी दूर तक हमें सुनाई देती रही।

खेलघर नौ बजे बन्द होता है। उससे पहले हम लौटना था, पर कोई मिल गया कि हम साढ़े नौ बजे खेल घर पहुँचे—चिन्तित से, कि फालू अकेला रो रहा होगा, आज शान में आकर बड़ी भूल की, पर देखते हैं कि फालू वहां अकेला खड़ा है। हमें देखते ही वह खिलखिलाकर दौड़ा और लिपट गया।

तभी एक आदमी आकर हमारे पास खड़ा हो गया—'बाबू जी, नमस्ते।" खेलघर का मुंशी—एक गढ़वाली भाई। बोला—"आप बच्चे को छोड़ गये, यह नौ बजे तक खेलता रहा, पर जब मैंने खेलघर बन्द किया और आप नहीं आये, तो मैंने सोचा, अब यह ज़रूर रोयेगा। आपकी बातें मैंने सुनी थी, इसलिए बिना इसे बताये मैं छिपकर बैठ गया कि देखूं अब भी यह घबराता है या नहीं। घबरायेगा, तो मैं इसके पास आ जाऊँगा, पर

तब भी यह नही घबराया और खेलता रहा। सचमुच बाबूजी, यह तो शेर बच्चा है।"

मुंशी उसे चुमकारकर चला, तो विद्या जी उसे कुछ देने को हुई, पर मैंने इशारे से उन्हे रोका और बाद मे कहा—"यह उसकी सद्भावना का अपमान है कि हम उसे पैसा से तोलें।" दूसरे दिन मैने उसे एक रुपया उसके बच्चा के लिए मिठाई की बात कहकर दिया।

कहने से तो बहुत बालक काम करते है, पर फालू बिना कहे काम करता है। सन्ध्या हुई कि छोटी बाल्टी उसने उठाई। नल से पानी भरा और ऊपर की छत ठण्डी की और तीन-चार बिस्तरो के कपडे धीरे धीरे ऊपर पहुँचाये। बाजार से वह दूध वगैरह ही नही लाता, राशन भी लाता है और मुसीबत यह कि उससे काम न लो, तो रोता है, लडता है, रूठ जाता है।

•

फालू के दो भाई और हैं उससे बडे। वे अकसर अपने नाना के घर रहते है—यो वह घर मे अकेला है। परीक्षाएँ निमटी, तो उसका एक भाई कुछ दिन के लिए आ गया। अब ये दो, एक जगह।

कोई पाँच छह दिन बाद एक दिन मैं उनके घर खाना खाने बैठा, तो पानी नही। भीतर मेरे एक खराश सी हुई—यह क्यो? फालू तो भाजन की चर्चा होते ही नल पर पहुँच जाता है और एक बाल्टी पानी निकालकर नव लोटा भरता है। उसे लाते-लाते कहता है—बरफ के माफिक, बरफ के माफिक। आज वह कैसे भूल गया? शायद भाई के साथ खेल मे लगा है। पुकारा—"फालू, पानी लाना बेटा।" पर पानी नही आया। क्या बात है? फिर पुकारा—"अरे, पानी नही लाया।"

दबी-सी आवाज कानो मे पडी—"प्रमोद लायेगा।" और अब फालू हर काम प्रमोद पर टालता है, पैर मलने लगा है, कन्नी काट जाता है और सुन-बहरा तो हो ही गया है। अब उसकी निगाह काम पर नही जाती, प्रमोद पर जाती है कि काम को प्रमोद क्यो न करे, वही क्या करे?

एक और दो की तरह यह भी साफ है कि जिस काम को एक आदमी

करता है, उसे दो करने लगें, तो वह पहले से जल्दी और सुन्दर होना चाहिए, पर होता नही ऐसा।

मेरे धनी मित्र हैं सेठ सेवकराम, मेवकराम खेमका। जिस घेरे में उनकी दूकान है, दूसरे व्यापारियो की भी दूकानें हैं। लाखो का हेर-फेर होता है इन दूकानो पर, पर दरवाजे की नालियाँ और सडक हमेशा गन्दी रहती हैं और बल्ब फ्यूज हो जाता है, तो महीनो नही बदला जाता! सफ़ाइ पर कौन ध्यान दे? बल्ब कौन बदले? शायद सबका यही उत्तर है—'यह सडक और ये नालियाँ हमारी ही तो नही हैं!" सारे देश का यही हाल है।

नागरिको मे सामूहिक उत्तरदायित्व का बोध—मुश्तरका जिम्मेदारी का ख्याल—किसी भी राष्ट्र के जीवित होने की सर्वोत्तम कसौटी है। किसी राष्ट्र का बल नापना हो, तो देखिए कि क्या इस देश के नागरिक देश के सामूहिक हितो के प्रति सतर्क हैं? या हर नागरिक अपने हित के सामने राष्ट्र के सामूहिक हित की उपेक्षा करता है? सक्षेप मे, देश के नागरिको मे यह भावना है या नही कि हम तुम्हारे लिए, तुम हमारे लिए?'

इस प्रश्न का उत्तर यदि 'हाँ' है, तो देश जीवित है, सबल है और उसका भविष्य उज्ज्वल है। यदि इस प्रश्न का उत्तर 'नही' है, तो वह देश निर्जीव है, निर्बल है और उसका भविष्य देश के स्वार्थी नागरिको के द्वारा किसी भी दिन बिक सकता है।

अपने स्वतन्त्र देश के सामूहिक हितो के प्रति क्या हम अपनी जिम्मेदारी अनुभव करते है और अनुभव करते हैं, तो उसे निभाते हैं? स्वय अपने से पूछिए और स्वय ही उसका उत्तर दीजिए।

जब हम बीमार हों

• •

"आओ चचा, आओ, कहो, कहाँ से चले आ रहे हो लपटे हुए-से इस तरह ?"

'कहीं से नहीं, घर से ही आ रहा हूँ, पर तुम क्या कर रहे हो यहा अंधेरे में बैठे हुए ?"

"कुछ नहीं, रमाशंकर के साथ गप्पें लडा रहा हूँ। बहुत दिन से ये मिले ही नहीं थे। आज बडी मुश्किल से ये फंदे में फंसे, तो जरा चौकडी जमी है।"

"अच्छा तो तुम बातें करो, मैं चल दिया।"

"वाह, चचा, वाह, चल कैसे दिये—जो बात कहने को आये थे, वह तो अभी कही ही नहीं और चल दिये—यह कैसे हो सकता है ?'

"नहीं, कहना-वहना कुछ नहीं है, यों ही चला आया था बैठे बैठे तुम लोग बात करो।"

अरे चचा, बात क्या किसी मसले मामले पर हो रही है कि आपकी बात सुन कर उसका घात हो जाएगा ? तो पहले तुम अपनी बात कहो, हमारी गपशप तो चलती ही रहती है।"

नहीं, कोई बात नहीं है, तुम बात करो।"

"चचा, फिर वही बे-बात की बात कि बात नहीं है, कोई बात नहीं है। जी, बात है और कोई खास बात है, जिसे कहने ही तुम आये थे।"

"चचा, मालूम होता है कि मेरी वजह से अपनी बात तुम नहीं कह रहे हो और बात यह है कि आज चची ने कुछ तेज-तुश कह दिया है।"

'अरे रमाशंकर, तुमने भी यह तेज-तुश की बात खूब कही, क्योंकि

यह जमाना ही तजो तुर्शी का है और घर घर इसी का छौक है, पर जिस मसाल की जीभ स तजो तुर्शी हाती है, जिस दिन तुम्हारी चची का निर्माण हुआ, उस दिन वह मसाला अल्ला मिया के गोदाम मे ही नही था। तजो-तुर्शी की तो है यह बात अब जहाँ तक तुम्हारे सामने बात कहन की बात है, उसकी बात यह है कि मेर लिए तुम मे और सुधाकर मे कोई फ्रक नहा है जैसा वह, वस तुम!'

"ता चचा, जब रमाशकर म और मुझ म काई फक नही है, तब वह बात मह क्या नही दत, जो कहने आय थे। देखो चचा, बात यह है कि जीभ तो बोलती ही है, क्याकि बोलन के लिए ही बनाई गयी है, शरीर के दूसरे अग भी बोलते है। हाँ, फ्रक यह जरूर है कि जीभ बालती है शब्दा म और दूसर अग बोलते हैं मुद्राआ मे, तो चचा, जब तुम आये, तुम्हारे परा की और चेहर की मुद्राए साफ़ कह रही थी कि कोई खास बात कहने को आ रहे हो तुम! अच्छा बोला, यह बात है या नही?"

"हाँ भाई बात तो यही है कि एक बात कहने ही मैं तुम्हारे पास आया था, पर बात यह है कि तुमने अँगा की मुद्रा का जो वणन किया, उससे मैं इस नतीजे पर जरूर पहुचा कि तुम यह लेख-वख का काम छोडकर अगर स्टेशन रोड पर पेड के नीचे बठकर ही हाथ देखकर भविष्य बताने का काम करन लगो, तो थोडे ही दिनो मे चाँदी के तगार घोल लो। कहो रमाशकर, है न यही बात?"

"अच्छा चचा चाँदी के तगार घोलन की योजना बाद म बनाई जाएगा, इस समय तो वह बात सुनाओ, जिस सुनाने के लिए तुम झपटे-झपट चले आ रह थे।'

"हाँ वो बात! अरे, वो बात कोई खास बात नही है, वो तो एक हसी की बात है। सुनी, तो सोचा कि तुम्ह भी सुना दूँ पर एक बात है भया कि उसे कही लेख-वेख मे या रेडियो-वेडियो म मत जोड देना, क्याकि बात यो ही हँसी की है पर तुम्हारी चची की बिरादरी मे फैल गयी, तो देश की घर गिरस्ती का ताम माम उखडा ही दिखाई देगा।"

"ला छाडा यह छान पिछोड और वह बात सुनो—बात यह हुई कि तुम्हारी चची को एक सहली अभी उनस मिलन आ गयी, तो मैं बाहर

बरामदे मे बैठकर एक पुस्तक के पन्ने उलटने लगा। वे दोना भीतर बाते करती रही। स्त्रिया को ज़ोर स बोलने की आदत होती है, तो मुझे उन दोना की बाते सुनाई देती रही। तुम्हारी चची ने कहा—बहन, इस बार तो बहुत दिनो मे आयी हो। कुछ नाराज़ हो या भूल ही गयी थी हमे ?"

उत्तर मिला—"अरी बहन, अपना से भला नाराज़गी की क्या बात ? और कही अपना को भूलकर काम चलता है क्या ? तो न नाराज़ थी, न भूल गयी थी, बस बीमार पड गयी थी।"

"मेरा ख्याल था कि तुम्हारी चची अपनी सहेली मे अब हमदर्दी प्रकट करेगी, पर उसने एक ऐसी बात कही कि मेरी तबियत ताज़ी हो गयी और मैं झपटा हुआ तुम्हारे पास चला आया। लो तुम भी उनकी बातचीत का आनन्द लो—

अच्छा जी, तो तुम बीमार थी, तो यो मुह क्या बना रही हो, या क्यो नही कहती कि पलँग पर पडी बीमारी के मजे लूट रही थी !

बीमारी क मजे ! बीमारी म भला क्या मजा होता है ? न कही आना, न जाना और बस ऊँ-हूँ और हाय-हाय !

वाह वाह, बीमारी म कोई मज़ा नही होता। अरी बहन, धम ने जिस पुरुष को नारी के लिए परमेश्वर बना दिया है, वही बीमारी मे परमेश्वर स पुजारी बन जाता है और जो तीज त्योहार हम से पैर पुजवाता है, वह हमारे ही पर दबाने लगता है। अब बताओ यह किस मजे से कम है ?"

चचा की बात सुनकर दोना हँस पडे। तब सुधाकर ने कहा—"चचा, मालूम होता है, चची ने यह अनुभव की वाणी ही अपनी सहली को सुनाई है !" चचा कुछ कहने ही वाले थ कि रमाशकर बोल पडा—"खैर, यह चची के अनुभव का ज्ञानामत हो या कल्पना का काव्यामत, एक बात साफ है कि इस बात से बीमारी के मजे का नया पहलू ज़रूर सामने आता है और वह है जनाना-पहलू !"

सुधाकर बोला—"तो मालूम होता है कि श्रीमान् जी बीमारी के मजे पर कोई शाध प्रबन्ध लिख रहे हैं और चची के जनाने-पहलू से पहले उसके मर्दाने-पहलू की भी खोज कर चुके है ?"

"जी, न मैं बीमारी के मजे पर खोज कर रहा हूँ, न लिख रहा हूँ

थीसिस, पर हाँ, आँख-कान बन्द कर नही जी रहा हूँ। इसलिए जो कुछ मेरे चारो तरफ होता है, उसे देखता भी हूँ और सुनता भी हूँ। अब कहो, चचा की बात सुनी या नही ?"

'अच्छा जी, न तुम कर रहे हो बीमारी के मजे पर खोज, न लिख रहे हो थीसिस तुम सिफ आँख कान खोलकर देख-सुन रहे हो चारा ओर की जिन्दगी को, तो तुमने बीमारी के मजे का जो मदाना पहलू देखा है या सुना है वह सुनाओ, जिससे चचा की बात दुपखी होकर उडने लग।"

"हाँ, तो बात सुनो और बात क्या एक मजेदार सस्मरण है। मेरे मित्र रघुनाथ जिस कालेज म पढते थे, उसी म एक लडकी पढती थी सुशीला। दोनो एक क्लास के साथी थे और घर भी दोनो का पास-पास ही था। रघुनाथ की महत्त्वाकाक्षा थी कि वह आई ए एस अफसर बनेगा। उसके अध्यापक भी यही समझते थे। एक दिन कॉलेज की भाषण प्रतियोगिता म सुशीला का भाषण सुनकर रघुनाथ के मन म आया कि यदि सुशीला मेरी पत्नी बने, तो मुझे अपने प्रशासनिक कामो के साथ सामाजिक सेवा का काय करने की भी सुविधा मिल जाए। सुशीला का भाई रघुनाथ का मित्र था। उसने अपनी बात उससे कही, तो उत्तर मिला—प्रस्ताव निर्दोष है, उत्तम है, पर तुम्हारे-हमारे बीच जाति भेद की दीवार है और पिता जी उस लाघने को हरगिज तैयार न होग। यह कोई लव मरिज का प्रस्ताव तो था नही कि उछलता फिरता, यह तो एक गुण पारखी का निवेदन था, बात दो मित्रो के बीच समाप्त हो गयी।

"इसके कुछ दिन बाद हाकी मच मे रघुनाथ का घुटना टूट गया और डाक्टरो न प्लास्टर चढ़ाकर उस पलग पर लिटा दिया। खबर पहुची, तो शाम को सुशीला के पिता उसे देखने आये और सुशीला भी साथ आयी। रघुनाथ को देखकर वह दुखी हुइ, कहा—रघुनाथ, मेरा विश्वास था कि तुम इस बार टॉप करोगे, पर यह दुघटना हो गयी।

"रघुनाथ ने कहा—सुशीला, यदि तुम थोडी देर को आ जाया करो, तो मैं पढ़ाई चालू रखूगा और तुम्हारा विश्वास इस हालत मे भी पूरा हो जाएगा। सुशीला कॉलेज से रघुनाथ के पास आ जाती और जो पढकर आती उसे बताती। दोनो का अध्ययन इससे पुष्ट होता और दोनो रोज घटा-

दो घटा साथ रहते । इस साथ रहने मे सुशीला ने निश्चय किया कि हमे हमेशा साथ ही रहना चाहिए। उसने अपने माता पिता से सघष किया। उसके साथ सस्ती भावुकता नही, विचारपूण सक्ल्प था, वह सफल हो गयी।

"अब रघुनाथ सिह जिस जिले मे अफसर होकर जाता है, श्रीमती सुशीला वहाँ समाज कल्याण का काम सम्भालती हैं। रघुनाथ सिंह का पद सुशीला जी को सुविधा देता है और सुशीला जी का काय रघुनाथ सिंह को प्रतिष्ठा और इस तरह दोना एक भरपूर जीवन विता रहे है। अभी पिछले दिना अपने छोटे भाई के विवाह मे आये थे। मिले, तो मैने पूछा—क्हो भाइ, क्या मजे हैं ? बोले—अपने तो भाई, बस बीमारी के मजे है। मैने कहा—हा भाई, दुनिया बीमारी मे परेशान होती है पर तुम हो कि बीमारी म ही सब परेशानिया की दवा पा गये। सुनकर खूब हस। अब बताओ कि यह बीमार पडने क मजे का मर्दाना-पहलू है या नही ?"

"अच्छा भाई सुधाकर हमने सुनाया बीमार पडने का जनाना पहलू और रमाशकर ने सुनाया मर्दाना पहलू ! अब तुम उसका कौन सा पहलू सुनाओगे ?"

"चचा, यह मत समझना कि मैं तुम्हारा चैलेंज यो ही पी जाऊँगा। लो फिर सुनो, बीमार पडन के मजे का मालियाना पहलू।'

"मालियाना पहलू ? यह क्या होता है जी ?"

'चचा, मालियाना पहलू होता है मालियाना पहलू, जिसम माल-ताल हाथ आये बीमार पडकर। लो, उलझते क्या हो सुन ही जो लो ! बहुत दिना का बात है, हमारे पडोस मे एक परिवार रहता था। बाप बेटा बहू। बेटा कचहरी म काम करता था और बूढा बाप पडा रहता था घर म, क्योकि उसे टी बी का रोग था। कहने को बूढा जी रहा था, पर था मौत के मुह म ही। एकदम कुरूप, ककाल। कपडा पहने से खाल छिल जाती थी, इसलिए वह करीब-करीब नगा ही पडा रहता था। दाढी बढी हुई और बहुत ही ददनाक हालत। बेटा बहू रोज प्राथना करते थे कि बूढा मर जाए और सच यह कि खुद बूढा भी हर घडी मौत को निमनण-पत्र भेजता रहता था।

"बेटा-बहू एक रात किसी मित्र की शादी में गये, तो घर के बाहर ताला लगा गये। बूढ़ा भीतर पड़ा रहा। उतरती रात कुछ चोर कहीं चोरी कर माल-ताल की गठरी लिये उस गली से गुज़रे, तो देखा ताला बाहर लगा है। एक ने कहा—अब, माल तो तौल ही लाये, आओ, पासंग भी पूरा कर लें। सब सहमत हो गये और ताला तोड़कर भीतर घुसे। लालटेन की मद्धी रोशनी में बूढ़े ने कपड़े से मुंह ढके चोरों को देखा, तो समझा कि ये यमदूत मेरी जान लेने आये हैं। बूढ़े ने अपने दोनों हड़ीले हाथ फैलाये और कुछ कहा। शायद यह कि—ना, मेरी जान मत लो, मुझे जीने दो या शायद यह कि—आओ, मैं कब से तुम्हारी इन्तज़ार कर रहा हूँ। जो भी हो, उसकी आवाज़ शब्दों में न ढल सकी और एक तीखी सी गुन-गुनाहट बनकर रह गयी। बूढ़ा सूरत शक्ल में 50 फीसदी भूत था ही, इस गुनगुनाहट से चोरों के लिए सौ फीसदी भूत हो गया और वे माल की गठरी वहीं पटक, ऐसे भागे कि फिर पीछे मुड़कर भी नहीं देखा। ढलती रात बेटा-बहू शादी से लौटे, तो ताला टूटा पड़ा था, किवाड़ खुले थे, बाप सुबह की थपकियाँ ले रहा था और एक गठरी नीचे पड़ी थी। खोलकर देखा, तो उसमें वह था, जिसे चाहा सदा था, पर पाया कभी न था—ज़ेवर, रुपये, सोना! वे सब कुछ भूल गये और उस लक्ष्मी को कहीं छुपाने की जुस्तजू में लग गये।

"चचा, बताओ, बीमार पड़ने के मज़े का यह मालियाना पहलू है या नहीं?"

ये तो हुईं बीमारी के मज़े की हल्की फुल्की बातें। जीवन में उनका भी अस्तित्व है और महत्व भी, पर न तो बीमार पड़ने पर सब पत्नियों के पति पर दबाने लगते हैं, न सबकी मनचाही शादियाँ हो जाती हैं और न सबके घर चोर माल की गठरी पटक जाते हैं। इसलिए जीवन के पट पर यह मनोवैज्ञानिक प्रश्न अभी ज्यों का-त्यों खड़ा है कि बीमार पड़ने का वास्तविक मज़ा क्या है? यह प्रश्न भी हल्के-फुल्के ढंग का है, इसलिए जब हम प्रश्न की गहराई में उतर रहे हैं, तब उचित है कि प्रश्न को भी नया रूप दें। इस स्थिति में प्रश्न का रूप यह होगा कि वह क्या चीज़ है जो बीमारी को बोझिल बनाती है और वह क्या चीज़ है, जो बीमारी को

बीमार के लिए सह्य-सुगम बनाती है ?

बीमार को औषधि की जरूरत है, पथ्य की जरूरत है और सेवा की जरूरत है, पर ये तीनो चीजे जिस एक चीज से सुलभ होती है, वह है दूसरा की सहानुभूति, हमदर्दी। यदि बीमार आदमी पास वाला की हमदर्दी पा ले, तो फिर और सब कुछ का पाना सुगम-सम्भव हो जाता है। यह प्राप्ति इतनी महत्वपूण है कि उसके अभाव म सब कुछ पाना भी बेकार हो जाता है और उसे पाकर और कुछ न मिले, तब भी बहुत कुछ मिल जाता है।

तो बीमार पडन का मजा यह है कि बीमार को पास वाला की सहानुभूति प्राप्त हो। उसक लिए यह अनिवाय है कि बीमार यह जान ले और मान ल कि उसका बीमार पडना पास वालो पर कोई अहसान नहीं है। वे जो उसकी सेवा करते है यह उनका स्नेह है, उनकी कृपा है और कृपा को नम्रता के साथ ग्रहण करना चाहिए, झुझलाहट या नखरे के साथ नही। इस भावना के मन म आत ही वातावरण मधुरता, प्यार, सेवा, सुश्रूषा एव मान स पूण हो जाता है। इस वातावरण मे स्वास्थ्य लाभ करना सुगम हो जाता है और बीमारी के समय की उदासी दूर हो जाती है।

बीमार देखता है कि घर के लोग हँसी खुशी के साथ चाय पी रहे हैं और अभी तक कोई उसके लिए दवा लेने नही गया। अब यदि वह चिल्ला कर कहे—"अरे कम्बख्तो! तुम्हारे पेट मे चाय की आग लग रही है और मैं यहाँ मर रहा हूँ तुम घरवाले हो या कसाई। आदमी या राक्षस?" तो निश्चय है कि कोई जल्दी-जल्दी चाय पीकर दवा लेन चला जाएगा, पर यह भी निश्चित है कि दवा देर म आयेगी, क्योकि लाने वाले के मन का चाव उस पछाड से नष्ट हो गया है। उस हालत म उसकी गति धीमी होगी, डाक्टर पर तकाजा मन्द होगा, रास्ते मे मिले दोस्तो से वह हल्की-सी गपशप करन का मोह भी नही छोडेगा, अपने लिए उसे दूसरी जो चीजें खरीदनी है, उन्हे भी उसी समय खरीदता लाएगा और दवा लाने के साथ यह पूछना भूल जाएगा कि खाना क्या दें और यदि बेचैनी बढ जाए, तो क्या उपाय करें।

इस ढील और उपेक्षा के लिए यदि बीमार फिर झल्लाएगा, तो उसे उसकी ही गरम शैली मे उत्तर मिलेगा—"बीमारी म रोज नय खान तो

मिलते नही, जो कल खाया था, आज भी खा लेना, डाक्टर तुम्हे चाट-पकौडी तो देन से रहा। घर म एक दवा का ही तो काम है नही, दस काम और भी है। ज्यादा शान उमड रही है, तो नस रख लो या नर्सिंग होम म चले जाओ।"

इस इटरव्यू के बाद बताइए बीमार पडन का क्या मजा रहा ? बीमार को सहानुभूति मिलनी चाहिए यह ठीक है, पर क्या यह भी ठीक नही है कि बीमार को सहानुभूति पाने की कला आनी ही चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि वह यह अनुभव करे कि उसकी बीमारी स घरवाला पर शारीरिक, मानसिक और आर्थिक बोझ पड रहा है और मेरी जिम्मेदारी अपनी सहिष्णुता से उस बोझ को हल्का करन की है, असहिष्णुता स बढाने की नही। बीमार के कान सहानुभूति के मीठे बोल सुनना चाहते हैं, पर उनका ही यह एकाधिकार नही। तीमारदार के कान भी सुनना चाहत हैं—"भैया, तुम्हे मेरी वजह से बहुत भाग-दौड करनी पड रही है—देखा, चाय पीकर डॉक्टर के यहाँ जाना, पता नही वहाँ कितनी दर लग जाए—या, तुम थोडी देर आराम कर लो, कब से जुटी हो काम म, साबूदाना आधे घण्टे बाद बन जाएगा, तो बीमारी आसमान मे नही चढ जाएगी।"

बीमारी को बढाकर मत महसूस कीजिए बीमारी को बढाकर मत बखानिए और बीमारी को बढाकर मत दिखाइए। बीमारी बढ रही हो, तब भी होश एव धैय को सम्भाले रखिए और अपने तथा दूसरा के हाथ-पर न फुलाइए। फिर लीजिए प्यार-पगी सेवा और बीमार पडने के मजे लूटिए।

पुस्तक-पिशाच एक धूर्त जीव

• •

"गाधीजी के सम्ब ध मे एक नयी पुस्तक आयी है, लीजिए ?" दिल्ली के एक पुस्तक-विक्रेता ने पूछा, तो मैंने अपनी जेब देखी, पर पसे अब किराये के ही बाकी थे।

उत्साह जरा चौककर फिर करवट ले चला, तो उसने कहा—"घनश्यामदास बिडला ने लिखी है पण्डितजी !" मेरे लिए यह निंदियाये आदमी की कमर म आलपीन चुभाना था कि आख खुले, तो फिर झपकी न ले। बात यह है कि मैं लेखक बिडला का प्रशसक रहा हू और ऐसा कभी नहीं हुआ कि उनका लेख देखने और पढने के बीच कभी ज्यादा अन्तर रहा हो।

पुस्तक विक्रेता ब धु के परिचय का लाभ उठाकर पुस्तक मैंने उधार खरीद ली और स्टेशन चला आया। अब गाडी मे बठते ही पुस्तक थले स बाहर, पर मैं महादेव भाई की लिखी भूमिका ही अभी पढ पाया हू कि आ गय एक पुराने सावजनिक मित्र उसी डिब्बे मे। थोडी बहुत बातें हुई कि निकले दो-तीन स्टेशन और तब मुझे जाना पडा शौचालय म।

लौटकर देखता हू, तो वे मित्र 'बापू' को बडे ध्यान से पढ रहे हैं। मैं कहता ही क्या और करता ही क्या, बस उन्ह देखता रहा, पर यह लो, आ गया उनका नगर भरठ। व हडबडाकर उठे और 'बापू' को अपने थले म रख मैं देख रहा हूँ कि खडे हो गये। मुझे उनसे कुछ कहना है, पर वे उसस पहले ही कह रह हैं—"पुस्तक वाकई बहुत अच्छी है। चार पन्ने क्या पडे कि मन रम गया। अब आज रात मे पूरी पढकर ही सोऊगा।" वे मेरी आँखो म उठे प्रश्न देख रह है, पर उन सबका उत्तर है तो—"किसी आते-

जाते के हाथों आपकी पुस्तक भेज दूंगा, या किसी दिन आप इधर आयें, तो ले लीजिएगा।" और उतरते उतरते यह भी—' वाकई बहुत अच्छी पुस्तक है भाई साहब।"

मैं कहता ही क्या और करता ही क्या, क्योंकि कहा क्या नहीं और किया क्या नहीं, सिवाय चोर चोर चिल्लाने के? वे चले गये, तो मन को समझाकर बैठ गया—चलो कोई बात नहीं, मेरे इन मित्र में मुझसे भी अधिक उत्सुकता है। मैं उधार लाने में नहीं झिझका, वे झपट ले जाने में नहीं चूके।

कहानी दिलचस्प है, पर उसका क्लाइमेक्स अभी नहीं आया, यह याद रखिए। दो सप्ताह बाद एक मित्र मेरठ जा रहे थे, उन्हें पुस्तक ले आने को कहा। वे उनके घर गये भी, पर वे न मिले—गाँव की किसी सभा में भाषण देने गये थे। फिर कुछ दिन बाद दूसरे मित्र गये, वे मिले भी, पर पुस्तक न दी। मुसकराकर बोले— 'भाई पुस्तक तो उन्हें ही मिलेगी, जब वे आयेंगे।" चले आये बेचारे, कहते भी क्या और करते भी क्या?

कोई तीन महीने बाद मैं स्वयं गया और किस्मत की बुलन्दी देखिए कि वे मिल भी गये। देखकर बड़े खुश हुए। आर्य समाज और कांग्रेस दोनों के समाचार पूछे, पर बातचीत के बाद मैंने पुस्तक माँगी, तो अचकचाकर बोले—"अरे, वो पुस्तक तुम्हें अभी तक याद है?" और मन मारकर सामने की आलमारी से पुस्तक निकाल लाये।

मैंने देखा —पुस्तक की जिल्द पर एक नम्बर भी चिपका था—27। मुझे देखते देख बुदबुदाते-से बोले, 'खैर, ले जाओ, हमने तो इसे अपने मुहल्ले की लाइब्रेरी में चढ़ा दिया था।"

पुस्तक हाथ में लिये तांगे में आ बैठा, तो मन में एक झुंझ सी मन्ना कर रह गयी—"पुस्तक पिशाच! एक धूर्त जीव!" और आज जब यह कहानी सुनाने बैठा हूँ तो सोच रहा हूँ कि दो मित्रों का अहसान उठाने और स्वयं आठ आने तांगे वाले को देने के बाद इस लेख का जो शीर्षक उस दिन हाथ आया था, वह क्या कुछ महंगा था?

●

यह कहानी मैंने एक बार अपने एक मित्र को सुनाई, तो वे ज़ोर से

हसे और बोले—"अरे भाई, पुस्तक उठाना तो एक कला है।"

और उन्होंने तब सुनाया फ्रान्स के महान लेखक अनातौले फ्रास का यह सस्मरण कि उसने अपनी आत्मकथा मे पाठको को सलाह दी है कि वे कभी किसी को अपनी कोई पुस्तक मांगी न दें। इस सलाह का आधार उनके ही शब्दो मे स्वय उनका अनुभव है। वे कहते है कि मेरा पुस्तकालय इतना पूर्ण है कि देश भर के विद्वान् उसे देखने आते है, पर इसकी अधिकाश श्रेष्ठ पुस्तकें वे हैं, जि हे मैं अपन मित्रो मे उधार मागकर लाया था, पर मैंने लौटाने का फिर कभी ध्यान भी नही किया। तकाजे हुए, कहा-सुनी हुई और मनमुटाव भी, पर मैंने हाथ आयीं पुस्तक को फिर कभी दूसरे का हाथ न देखने दिया।

•

सर वाल्टर स्कॉट क एक मित्र उनकी कोई पुस्तक ले गये। मित्र गहरे थे, पुस्तक देनी पडी, पर कुछ दिन बाद ही उन्होने अपने मित्र को एक पत्र लिखा, जिसमे एक दिलचस्प वाक्य यह था—"पुस्तक लौटाना न भूलिएगा। यह इसलिए लिख रहा हूँ कि हमारे मित्र 'बुककीपिंग' (हिसाब-किताब) म कितने ही कमजोर क्यो न हो, 'बुक कीपिंग' (पुस्तक रख लेने) मे परम पटु होते हैं।"

•

पुस्तक लेकर अपने सग्रह मे सदुपयोग के लिए सुरक्षित रख ली जाती हो, यही नही है, यार लोग कुछ और भी करते हैं। यह काका गाडगिल ने अपने एक लेख मे हमे बताया है।

उनके पास कानून की एक कीमती पुस्तक थी और एक कीमती मित्र उसे माँग ले गये। काका चतुर भी हैं और सतर्क भी, पर मित्र गहरे थ, विद्वान थे। काका पुस्तक पकडे न रख सक, अँगुलिया ढीली करनी पडी।

बहुत दिन तक पुस्तक न लौटी। कहलवाया, तकाजे किये, पर पुस्तक न आयी। काका उनसे स्वय मिले, तो उत्तर मिला—"क्या बताऊँ, आपकी पुस्तक जाने कहा रखी गयी कि मिलती नही।"

इस मायूसी के कइ महीने बाद वही पुस्तक काका को एक कबाडी की दुकान पर रखी मिली और वे अपनी ही पुस्तक को फिर से खरीद लाये।

पुस्तक पर पहले से लिखा उनका नाम अब भी लिखा था। हाँ, किसी ने उसे लाल स्याही से काट जरूर दिया था। इस संस्मरण में काका के मित्र की धूर्तता का सम्मान है या उनके नौकर की चतुराई का, इसे राम जाने!

•

माँगी हुई पुस्तकें अक्सर अपने घर नहीं लौटतीं, इसका एक कारण है धूर्तता, दूसरा मूर्खता और तीसरा प्रमाद। धूर्तता और मूर्खता के कुछ उदाहरण ऊपर आये हैं, डाक्टर महादेव साहा से अब प्रमाद का यह उदाहरण सुन लीजिए।

मेजर बसु का पूरा पुस्तकालय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान कार्यालय प्रयाग को दान में मिला है। इस संग्रह में प्रयाग की पब्लिक लाइब्रेरी की भी एक पुस्तक है। यह पुस्तक कभी स्वर्गीय बसु ने मँगाई होगी, पर लौटा न पाये और अब यह सम्मेलन के क़ैदखाने में जीवन के दिन काट रही है।

यह प्रमाद, आलस्य और लापरवाही के अतिरिक्त और क्या है?

स्वस्थ देश के नागरिक का स्वस्थ लक्षण इस उदाहरण में है—

अमरीका के किसी पुस्तकालय से किसी ने एक पुस्तक ली और चीन में जा बेचा। अमरीका के किसी यात्री ने वह पुस्तक हांगकांग में कबाड़ी की दूकान पर देखी और खरीदकर अमरीका के उसी पुस्तकालय को अपने खर्च से भेज दी।

•

डाक्टर महादेव साहा ने अपने एक मित्र से पढ़ने को एक पुस्तक ली, पर तभी वे चले गये जेल। पीछे दूसरे साथी वह पुस्तक पढ़ते रहे। डाक्टर साहब जेल से लौटे तो देखा पुस्तक मैली हो गयी थी। उन्होंने बाजार से नयी पुस्तक खरीदी और उस मित्र को लौटा दी, क्योंकि जब उन्होंने पढ़ने को वह पुस्तक अपने मित्र से ली, बिलकुल नयी थी।

•

इस प्रश्न का समाधान कहाँ है? पुस्तक माँगी देने की आदत बन्द की जाय या हम दूसरों की धूर्तता, मूर्खता और लापरवाही का सदा शिकार होते रहें?

सस्कृत के पुराने नीतिकार ने इस प्रश्न का दो टूक जवाब दिया है। उसकी साफ राय है कि लेखनी, पुस्तक और नारी, दूसरा के हाथा गयी कि बस गयी, क्योकि पहले तो वह लौटती ही नही और लौटती भी है तो खराब हाकर।

पुस्तका के सम्बन्ध म एक प्रयोग विश्वविख्यात लेखक स्टीवेन्सन का है। वे नयी पुस्तक लते, उसे पढते और जहा वह पूरी होती, उसे वही छोड़ देते—यह स्थान चाहे ट्राम की सीट हो या पाक की मेज।

मित्र कहते—"भले आदमी, इतनी अच्छी-अच्छी पुस्तकें या रास्ते मे डाल देते हो, यह क्या बात है?"

स्टीवेन्सन का उत्तर था—"जिन्दगी मे पहले ही कौन कम बोझ हैं, जो उस पर और लादू फिर जीवन तो एक यात्रा है। उसमे बोझ बाधकर चलना तो मूखता ही है।"

इस सम्बन्ध मे दूसरा प्रयोग है महात्मा तिलक का। वे बम्बई से पूना को चले, तो उन्होने प्रभात का दैनिक खरीदा। वे उसकी मोटी लाइन भी अभी नही देख पाये थे कि पास बैठे एक सज्जन बोले—"जरा बीच का पन्ना दीजिएगा।"

तिलक महाराज ने जेब से इकन्नी निकालकर उनकी आर बढाई—"लीजिए, आप दूसरा अखबार खरीद लीजिए और मुझे शान्ति स पढने दीजिए।"

•

० आप पुस्तको का सग्रह ही न रखिए या ऐसी जगह रखिए कि कोई उन्हे देख न पाये।

० आप यदि पुस्तक माँगने वाल को डॉक्टर साहा जैसा स्वस्थ समझते हैं, तो पुस्तक दे दीजिए।

० आप यदि पुस्तक देते है, तो पहले से ही यह आशा छोड दीजिए कि कोई उस लौटायेगा और इरादा कर लीजिए कि सर वॉल्टर स्काट की तरह आप उसे याद ही न दिलाते रहगे, किन्तु अपने पुरुषाथ से अपनी पुस्तक वापस लिवा लायेंग।

० आप तिलक महाराज की तरह सख्त रहिए और साफ इनकार कर दीजिए।

पुस्तक पर पहले से लिखा उनका नाम अब भी लिखा था। हाँ, किसी ने उसे लाल स्याही से काट जरूर दिया था। इस सस्मरण मे काका के मित्र की धूतता का सम्मान है या उनके नौकर की चतुराई का, इसे राम जान !

●

माँगी हुइ पुस्तकें अकसर अपन घर नही लाटतीं, इसका एक कारण है धूतता, दूसरा मूखता और तीसरा प्रमाद। धूतता और मूखता के कुछ उदाहरण ऊपर आय हैं, डाक्टर महादेव साहा से अब प्रमाद का यह उदाहरण मुन लीजिए।

मेजर वसु का पूरा पुस्तकालय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान कार्यालय प्रयाग को दान म मिला है। इस सग्रह म प्रयाग की पब्लिक लाइब्रेरी की भी एक पुस्तक है। यह पुस्तक कभी स्वर्गीय वसु ने मँगाई हागी, पर लौटा न पाय और अब यह सम्मेलन के कदखाने मे जीवन के दिन काट रही है।

यह प्रमाद, आलस्य और लापरवाही क अतिरिक्त और क्या है ?

स्वस्थ देश क नागरिक का स्वस्थ स्वरूप इन उदाहरणो म है—

अमरिका क किसी पुस्तकालय से किसी न एक पुस्तक ली और चान म आ वेची। अमरिका के किसी यात्री ने वह पुस्तक हागकाग म कबाडी की दूकान पर देखी और खरीदकर अमरिका क उसी पुस्तकालय को अपने खच से भेज दी।

●

डॉक्टर महादेव साहा ने अपने एक मित्र स पढन को एक पुस्तक ली, पर तभी वे चले गये जेल। पीछे दूसरे साथी वह पुस्तक पढत रहे। डॉक्टर साहब जेल से लौटे तो देखा पुस्तक मैली हा गयी थी। उन्होने बाजार स नयी पुस्तक खरीदी और उस मित्र को लौटा दी, क्योकि जब उन्होने पढ़न को वह पुस्तक अपन मित्र से ली, बिलकुल नयी थी।

●

इस प्रश्न का समाधान कहाँ है ? पुस्तक मागी देने की आदत बन्द की जाये या हम दूसरा की धूतता, मूखता और लापरवाही का सदा शिकार होते रहे ?

सस्कृत के पुरान नीतिकार न इस प्रश्न का दो टूक जवाब दिया है। उसकी साफ राय है कि लेखनी, पुस्तक और नारी, दूसरो के हाथा गयी कि बस गयी, क्याकि पहले तो वह लौटती ही नही और लौटती भी है तो खराब होकर।

पुस्तको के सम्बन्ध मे एक प्रयोग विश्वविख्यात लेखक स्टीवेन्सन का है। वे नयी पुस्तक लेत, उसे पढते और जहा वह पूरी होती, उस वही छोड दते—यह स्थान चाहे ट्राम की सीट हो या पाक की मेज।

मित्र कहत—"भले आदमी, इतनी अच्छी-अच्छी पुस्तकें यो रास्ते म डाल दते हो, यह क्या बात है?"

स्टीवेन्सन का उत्तर था—"जिन्दगी मे पहले ही कौन कम बोझ हैं, जो उस पर और लादू फिर जीवन ता एक यात्रा है। उसमे बाझ बाधकर चलना तो मूखता ही है।"

इस सम्बन्ध मे दूसरा प्रयोग है महात्मा तिलक का। वे बम्बई स पूना को चले, तो उन्होंने प्रभात का दनिक खरीदा। वे उसकी मोटी लाइन भी अभी नही देख पाये थे कि पास बैठे एक सज्जन बोले—"जरा बीच का पन्ना दीजिएगा।"

तिलक महाराज ने जेब से इकन्नी निकालकर उनकी ओर बढाई—"लीजिए, आप दूसरा अखबार खरीद लीजिए और मुझे शान्ति से पढन दीजिए।"

•

◦ आप पुस्तको का सग्रह ही न रखिए या एसी जगह रखिए कि कोई उन्हे दख न पाये।

◦ आप यदि पुस्तक मागने वाले को डॉक्टर साहा जसा स्वस्थ समझते हैं, तो पुस्तक द दीजिए।

◦ आप यदि पुस्तक देते हैं, तो पहले से ही यह आशा छाड दीजिए कि कोई उस लौटायेगा और इरादा कर लीजिए कि सर वॉल्टर स्काट की तरह आप उसे याद ही न दिलाते रहगे, किन्तु अपने पुरुषाथ से अपनी पुस्तक वापस लिवा लायग।

◦ आप तिलक महाराज की तरह सख्त रहिए और साफ इनकार कर दीजिए।

फालतू प्रश्न

• •

1931 के दिन थे। गांधी इरविन समझौता चल रहा था और गांधी जी दूसरी गोल मेज कॉन्फ्रेन्स मे शरीक होने विलायत गये हुए थे। वाइसराय लार्ड विलिंग्डन की सख्त हकूमत जारी थी और देश म जगह-जगह समझौता टूटने के आसार दिखाई दे रहे थे। जनता पर आशा निराशा की एक अजब-सी धूप छाँह छायी हुई थी।

मैं सहारनपुर से देहली जा रहा था, इटर क्लास के डिब्बे म काफी जगह थी। आराम से पसरा एक नया मासिक पढ रहा था। उसमे एक हास्य रस की कहानी थी। कहानी लेखक का नाम तो अब याद नही, पर उसम एक पात्र ने कहा था कि 'हिन्दुस्तान म बेवकूफ लोग सबसे ज्यादा इटर क्लास मे सफर करते हैं।' मैं भी इटर क्लास मे सफर कर रहा था, इसलिए मन ही मन कह रहा था कि यह लेखक एकदम गधा है। भला यह भी कोई बात कही इस जाहिल ने !

मुजफ्फरनगर मे डिब्बा जरा भर गया और महफिल गरम हुई। काशी की गलिया की तरह घूमघाम कर बात राजनीति के चौराहे पर आ टिकी। एक साहब ने तपाक से फरमाया— बस साहब, अब तो गाधीजी हिन्दुस्तान नही लौट सकते। अंग्रेज उन्हे वहा कैद कर लेंगे और मुमकिन है कि सर सैम्युअल होर उन्ह गोली मार दे।"

एक दूसरे साहब बोले—'यह हरगिज नही हो सकता। लार्ड इरविन ने अपनी जमानत पर उन्ह वहाँ भेजा है।"

पहले साहब बोले—"अजी जनाब, ये इरविन और विलिंग्डन सब

एक ही थले के चट्टे-बट्टे है। दरअसल यह समझौता अँग्रेज़ो की एक जालसाज़ी थी, जिसमे काग्रेस उलझ गयी।"

दूसरे साहब बातचीत को वहकने से सँभालते हुए बोले—"खैर, जालसाजी हो या कुछ और अँग्रेज गाधीजी को नही रोक सकते।"

इस तरह अब ये दो मत थे और करीब करीब सारा डिब्बा दो हिस्सो में बट गया था, हरेक दल अपनी बात पर मजबूती के साथ ठहरा हुआ था और अपनी बात को इस दावे के साथ कह रहा था जैसे अभी वह लन्दन से टेलिफोन कर लौटा हो।

खतौली पहुँचते पहुँचते दोनो दलो म गरमी आ गयी और फिर मामला गालियो की गली को पार कर गुत्थमगुत्था के चौराहे पर जा पहुँचा। तब मैंने खडे होकर ज़ोर से कहा—दोस्तो, मैं आपके सामने अपना दाया कान पकडकर इस लेखक से माफी मागता हूँ, जिसे अभी-अभी मैं अपने मन मे गधा कह रहा था और तब मैंने ऊँचे स्वर से वह लाइन पढी—'हिन्दुस्तान म सबस ज्यादा बेवकूफ लोग इटर क्लास म सफर करते है।' कुछ लोग झेंप गय, कुछ हँस पडे और कुछ भन्ना से गये, मगर खैर, मामला निमट गया और मेरठ छावनी पहुँचकर तो बहुत ही लुत्फ आया, जब अखबार मे पढा कि गाधी जी इटली होकर हिन्दुस्तान लौट रहे हैं।

दोना दलो की बात, एक मामूली अन्दाज से ज्यादा कुछ न थी, पर दोनो उसे वेद की ऋचा और कुरान की आयत समझ रहे थे तो कोई हज नही, समझा भी रहे थे मेरे शेर! हमारे स्वभाव की यह कैसी हिमाकत है?

•

एक दूसरे सफर का हाल सुनिए। वह इसमे भी बढकर है।

उस दिन मैं लाहौर से सहारनपुर लौट रहा था। रल क

ही पुरुष थे, स्त्री सिर्फ़ एक थी। वह अपने तरुण साथी के

रही थी। देखने मं सुन्दर, बोलन मे मधुर, उम्र कोई

अपने पढने मे तल्लीन, पर अचानक देखता हूँ कि डिब्बे ने

पेश है और सब तरफ़ खुसफुस-खुसफुस उस पर निहायन

पालियामेण्ट की पार्टियाँ बहस फ़रमा रही हैं।

बहस यह है कि यह नौजवान इस औरत का कौन

राय है कि यह इसका पति है, दूसर की राय है कि यह इसके साथ घर स भागी जा रही है।

एक बार तो मेरा दिमाग गुस्से से गरमा गया, पर मन जल्दी ही शान्त हो गया और मुझे एक मजाक सूझा। खडे होकर मैंने उस बहन स कहा—"इस डिब्बे के य लोग आप दोना का रिश्ता जानने को बेचन है। आप मेहरबानी कर इनकी बेचनी शान्त कीजिए, वरना ये बस अब इजन के सामने लेटन का प्रोग्राम पास ही करने वाले है।"

उन दोनो क रिश्ते से इन मुसाफिरा का कोइ वास्ता न था, पर इस जानकारी क लिए हरेक जान दे रहा था और उन दोना के रिश्ते के बारे म किसी की कोइ जानकारी न थी, पर अपनी खुदरा जानकारी के लिए हरेक जान की बाजी लगान का तयार था। हमारे स्वभाव की यह कसी सनक है ?

●

उस दिन मरे एक सम्बन्धी कहीं बाहर स आ रहे थे। मैं उन्ह लने स्टेशन गया, तो एक मित्र मिल गय। कहिए कस आये ? छूटते ही उन्होंने सवाल जडा। य मित्र उस क्लास तक पास हैं जो भारत के विश्वविद्यालयो मे सबस अन्त की क्लास है और न्याय विभाग की उस कुरसी पर बठ चुके हैं, जो सबसे ऊँची है।

उनका प्रश्न था— कहिए कस आय ?'

उत्तर दिया— एक सम्बन्धी आ रहे है।" मैंने समझा कि बात पूरी हो गयी, पर हो कहाँ गयी पूरी ? पूछा—"कौन से सम्बन्धी आ रहे है ?" मैंन मन मे सोचा कि क्या इनके पास मेरे सब सम्बन्धियो की पूरी सूची है जो इन्होंने यह प्रश्न पूछा। मतलब कुछ नही, वही गले की कसरत करने की आदत।

मैंने उन्हे एक गहरा धक्का दिया—'जी, बालकराम पालीवाल आ रहे है।"

मेरा खयाल था कि इस उत्तर से व ठडे हो जायेंगे, पर उन्होंने तुरन्त एक नया जडा दे दिया—"अच्छा पालीवाल जी आ रहे हैं बरेली वाले ! हाँ-हाँ, मैं उन्ह जानता हूँ।" मैंने उन्ह एक नयी झाक दी—' जी हाँ, ऐसा

कौन है, जिसे आप नहीं जानते।"

इस श्लोक पर भी वे झेंपे नहीं, एक छाक दे बैठे— 'यह सब आपकी कृपा है।" मैंने अपने मन में सोचा—यह हाल तो विद्वानों की मूखता का है, मूर्खों की मूखता का क्या हाल होगा!

•

मुझे अपना कार्यालय उस मकान में बदलना पड़ा, जहां पहले राशनिंग दफ्तर था। स्वाभाविक है कि बहुत-से आदमी पहले वाले दफ्तर के काम से यहां आते। मन इस सम्बन्ध में जितने भी प्रश्न हो सकते हैं सब का एक समाधान तयार किया— राशनिंग दफ्तर यहां से कलक्टरी कचहरी के पास डानवास्को बिल्डिंग में चला गया है।'

इसके बाद भी प्रश्नों की फुलझड़ियां छूटती ही रहतीं। एक दिन मैंने हिसाब लगाया, तो यह औसत निकला कि आने वाला म हरेक ने कम से कम तीन और ज्यादा से ज्यादा नौ प्रश्न पूछे।

•

हाईस्कूल के एक अध्यापक की बातचीत की यह चाशनी ज्यों की त्यों प्रस्तुत है।

'यह राशनिंग दफ्तर है न ?"

"जी नहीं, राशनिंग दफ्तर यहां से कलक्टरी कचहरी के पास डानवास्को बिल्डिंग में चला गया है।"

"मुझे मकान के लिए एक दरख्वास्त देनी थी।"

वहीं जाकर दीजिए।"

'टी आर ओ साहब भी वहीं मिलते हैं ?"

'जी हाँ, उनका तो दफ्तर ही है।"

'बाबूजी, इस कमरे में एक वो दाढ़ीवाला क्लर्क भी तो बैठा करता था ?"

'दाढ़ीवाले और क्लीन-शेव सब वहीं चले गये हैं।'

'बाबूजी हमें मकान मिल भी जायगा ?"

'कोशिश कीजिए।"

"किससे कोशिश करें ?

"दफ्तर वालो से मिलिए।"
"बाबूजी, टी आर ओ कैसा आदमी है ?"
"बहुत अच्छे आदमी है।"
'कहा मिलेगे वे ?"
"वही दफ्तर म।'
"दफ्तर कलक्टरी कचहरी के पास है ?"
"जी हा !"

●

मेरे पास अक्सर इस तरह के लोग आते है, जिन्हे अपने किसी काम मे मेरी सवा सहायता की जरूरत होती है। वे आते हैं, इसमे मुझे एतराज नही, मुझे इसम सुख मिलता है, पर अपनी बात कहने से पहले वे जो बेकार की बातो म मरा काम का समय खराब करते हैं उस पर मुझे दुख होता है और कभी-कभी रूखा हो जाना पडता है।

मैं तो खर हूँ किस खेत की मूली, लोग तो बडो बडो को नही बख्शत। श्रद्धेय मालवीय जी उस दिन दोपहर का भोजन करने को उठ रहे थे कि एक सज्जन पधारे। उन्हे सुनाकर कह दिया गया कि भोजन परोसा जा चुका है, पर वे हैं कि मालवीय जी की गुणगाथा गाय जा रहे है। मालवीय जी अपनी सज्जनता स तग हैं। पूरे डेढ घट बाद पता चला कि वे काशी स गोरखपुर तक का किराया चाहत है। किराया लेकर वे टले और तब कही दो बजे मालवीय जी ने भोजन किया।

●

जो बात हम जानते है, उस पर भी दूसरो का समय बरबाद करत है।
"क्यो भाई, म्युनिसिपैलिटी के इलेक्शन मे क्या हुआ ?'
"शेखजी चेयरमन चुन गये।'
"कितने वोटो से ?"
"दो वाटो से। बडी घमासान रही।"
"हा, मैं तो उस दिन वही था।'

अब कोई इस भले आदमी स पूछे कि जब तू वही था और तुझे सब कुछ मालूम है, तो मरी खोपडी क्या चाट रहा है !

•

कुछ मित्र है, जिन्हे कही आते-आते सडक पर देखते ही खून जम जाता है और आख बचाकर निकल जाना चाहता हू पर उनकी आखें है कि नही चूकती ताड लेती है।

' अरे भाई, ऐसी भी क्या नाराजगी है। अब तो तुम बहुत बडे आदमी हो गये हो, हम गरीबो से भी एक दो बात कर लिया करो।"

बस सडक पर ही अखाडा तैयार दस बीस मिनिट मामूली बात है और बातें कुछ नही, इधर उधर की वही मामूली बाते।

•

एक और मित्र है। लम्बी बातें करने के बाद वे पीछा छोडते है, पर दरवाजे के बाहर आते ही फिर रोक लेते है और एक पूरी मीटिंग कर डालते है। यह भी एक सनक है, और क्या ?

•

—फालतू बातें हमारे राष्ट्रीय चरित्र की एक बहुत बडी कमजोरी है। इसे दूर करने के लिए सिर्फ वही बात पूछिए, जो आप नही जानते।

—सिर्फ वही बात कहिए, जो वे नहीं जानते, जिनसे आप कह रहे है।

—उतनी बात कहिए और उतनी ही पूछिए, जितनी इस समय जरूरी है।

—बातो के बरताव मे, उसी तरह कम खर्च रहिए, जिस तरह आप रुपयो के बरताव मे कम खर्च रहते हैं या आपको रहना चाहिए। बातचीत मे जीवन की बहुत ताकत खर्च होती है। अपने स्वास्थ्य और लम्बे जीवन के लिए उसे बचाइए। मौन कोरा धर्म नही है वह स्वास्थ्य के लिए एक टानिक है।

—मेरी पिछली भयकर बीमारी मे विख्यात चिकित्सक डॉ आर. एन वागले ने दवाइयो के साथ ही नुसखे मे प्रतिदिन पाच घण्टे का मौन लिखा था। उस समय तो हम लोग हँसे थे, पर बाद मे मैंने देखा कि उससे मुझे बहुत ताकत मिली, जिसे मैने घर आयी मौत को पछाडने मे लगाया।

—कम बातें कीजिए, काम की ही बातें कीजिए और काम का समय बचाइए।

जिये तो ऐसे

• •

"अरे भाई, यो गुमसुम क्या बठे हो ?"

"गुमसुम न बठें, तो फिर क्या करें ?

"क्या करें ? कमाल का सवाल है, जसे इस दुनियाँ म करने को कोई काम ही न बचा हो। भला, कामो की कमी है इस दुनिया मे। अरे भाई, एक काम शुरू करो, तो निन्नानवे काम सामने आ खडे होते हैं। इस तरह दुनिया मे काम ही काम हैं और तुम पूछ रहे हो क्या कर ?"

"ठीक है ठीक है तुम्हारी बात और मैं उस पर अगूठा लगाने को तयार हूँ, पर मेरी इस बात पर तुम भी तो ध्यान दो कि काम सौ नही, हजार नही, लाख हैं, पर जब कुछ करने को जी न चाहे, तो फिर क्या कर ?"

"ओ हो, यह बात है, तो यो कहो कि तुम बादशाही ऐहदी हो। दुनिया समय रही थी कि वे सब मर खप गये, पर आज मालूम हुआ कि उनम एक अभी जिन्दा है और वह तुम हो।"

'बादशाही ऐहदी ? क्या होता है बादशाही ऐहदी ?"

"अर भाई, तुम बादशाही ऐहदी हो और यह नही जानते कि बादशाही ऐहदी क्या होता है। मालूम होता है तुम्हे तुम्हारी सूरत दिखाने के लिए पुरानी कहानी का शीशा दिखाना पडेगा।"

"पुरानी कहानी का शीशा ? यह क्या होता है ?"

' ' अरे भाई, पुरानी कहानी का शीशा, यानी पुरानी कहानी। अच्छा तो अब ज्यादा उलझो मत और वह पुरानी कहानी सुनो—

अकबर का नाम सुना है ? हाँ हाँ, वही दिल्ली के अपने समय के प्रतापी सम्राट अकबर, जो सन् 1555 म जन्मे और सन 1605 म मरे,

मशहूर मुगल वादशाह। बडे मौजी जीव थे, पर एक दिन घूमने को निकले, तो फकीरो के तकिये मे भी गये और फकीरो को खैरात बाटी। उन फकीरो म दो फकीर ऐसे भी थे कि जो लेटे ही रहे, भीख मागना या लेना तो दूर की बात, बादशाह के सामने तक नही आये।

बादशाह ने दूसरो से पूछा कि क्या वे बीमार है? फकीरो ने उन्हे बताया कि वे बीमार नही है, ऐहदी है—ऐसे आलसी कि उठना भी पसन्द नही करते और भूख लगी हो, तब भी नही उठते। हम लोग ही इन्हे मुश्किल से हिला डुलाकर तकाज़े के साथ कुछ खिला देते है, तो खा लेते है।

बादशाह ने पूछा—"अगर तुम लोग इन्हे न खिलाओ, तो फिर क्या हो?"

फकीरो ने बताया कि एक बार हम लोगो ने किसी बात पर नाराज़ होकर ऐहदी की खबर नही ली, तो वह उठा नही, अपनी जगह ही पडा-पडा मर गया।

उसी दिन शाम को बादशाह अकबर ने ऐलान कर दिया कि ऐहदियो के लिए शाही ऐहदीखाना खोल दिया गया है। वहा ऐहदियो को दोनो समय बढिया खाना और सब तरह का आराम मिलेगा। बस फिर क्या था, दो-चार दिन मे ही कई हज़ार आदमी वहाँ पहुँचकर पलँगो पर लेट गये और बादशाह के हुक्म के मुताबिक उन्हे बढिया खाना मिलने लगा। काम न धाम, मौज तमाम।

बेगम ने एहदीखाने का हाल सुना, तो घबरायी। उसने सोचा कि ये मुफ्तखोर तो सारा खजाना खा जायेंगे। बात यह थी कि इन ऐहदियो की तादाद रोज़ रोज़ बढ रही थी। बेगम ने बीरबल को बुलाकर कहा कि वे इसके लिए कोई तदबीर सोचे।

दूसरे दिन फूस के गट्ठर और कुछ सिपाही साथ लेकर बीरबल शाही ऐहदीखाने मे गया। सचमुच हज़ारो आदमी आराम से पडे हुए थे। बीरबल ने कडककर सिपाहियो को हुक्म दिया—"इन सब मुफ्तखोरो की खाटो के नीचे फूस डालकर आग लगा दो।"

हुक्म सुनते ही सैकडो आदमी उठकर भाग गये और सैकडो भाग गये, फूस बिछाते देखकर। जब फूस मे आग लगाने का नम्बर आया, तो

वहाँ सिर्फ पाच आदमी थ। जब आग लग गयी, तो उनमे से एक ने बिना गर्दन उठाये—बिना हिले डुले अपने साथियो को आवाज देकर कहा—"अरे भाइयो, आग लगाई जा रही है।"

दूसरे न बिना हिल डुले और बिना आख खोले कहा—"अरे भाई, आग लग रही है, तो लगन दे, पर चुप रह।"

आग जलने लगी और उन पाँचो के कपडे भी, पर व उठे नही, पडे ही रह। वीरबल के हुक्म से आग बुझाई गयी। उन पाचो को बादशाही ऐहदी घोषित किया गया और उनके आराम का पूरा प्रबन्ध कर दिया गया।

अब समझे कि बादशाही ऐहदी क्या होता है और क्यो मैंने तुम्हे बादशाही ऐहदी कहा ?"

"हा मैं समझ गया कि बादशाही ऐहदी क्या होता है, पर तुम भी यह बात समझ लो कि मैं न ऐहदी हू, न बादशाही ऐहदी, क्योकि जब काम म जुटता हू तो भूत बनकर दीन-दुनिया को भूलकर जुटता हू, पर जब कोई काम न हो, तो फिर क्या करू ?"

"खर यह तो तुमने खुशी की खबर सुनायी कि तुम न ऐहदी हो, न बादशाही ऐहदी, पर यह भी तो कुछ अच्छी आदत नही है कि जब काम म जुटे तो भूत की तरह पर काम से निमटे तो गुमसुम। अरे भाई, काम नही है, तो फिर किसी स बात चीत ही करो, दूसरे की सुनो, किसी से कुछ पूछ लो किसी को कुछ दो। यह क्या कि बैठ गय बुत बनकर, जस कोई मनहूस हो।"

'ओ हो कह चले जा रहे हो बस अपनी ही अपनी। ठीक है कि गुमसुम न बठो और बातचीत करो, पर क्या बातचीत कर। जब कोई बात ही न हो ?"

"क्या बातचीत करो ? बातचीत म क्या का क्या मतलब ? एक इधर की कहो, एक उधर की बस बातचीत जारी। अब तुम पूछोग कि इधर की क्या, उधर की क्या ? तो सुनो इधर की यानी घर की और उधर की यानी बाहर की इधर की यानी देश की और उधर की यानी परदेश की, इधर की यानी लोक की और उधर की यानी परलोक की, कहो बातचीत पक्की हुई या नही ?"

फिर भाई मेरे, बातचीत काई ठूठ नहीं है कि जैसा खडा है बस खडा रह। बातचीत है बेल का पड, जिसके पत्ते म पत्ता समाया रहता है और पत्त म पत्ता फूटता रहता है। या कहा कि बात म से बात निकलती रहती है। ला, अभी उस दिन की बात तुम्ह सुनाऊँ कि कई साथी बैठे बातचीत कर रह थ—या ही गपशप, कोई खास बात नहीं। बातचीत घूम फिर कर राजनीति पर आ गयी और राजनीति से गधे पर। भला कहाँ राजनीति, कहाँ गधा। इस समय याद नहीं कि यह बात किस तरह रपटी, पर बात या हुई कि किसी ने कहा कि राजनीति मे सफल वही हो सकता है, जो बात पर बात जडने मे होशियार हो और एक किस्सा सुनाया—

पहली बडी लडाई की बात है कि इगलड के प्रधानमन्त्री श्री लायड जाज जलसे म अपनी युद्धनीति समझा रहे थे। वे प्रभावशाली प्रधानमन्त्री थ और यह नियम है कि प्रभावशाली आदमी के विरोधी भी होते ही है। जब उनका भाषण पूरी तरह जम रहा था, उन्ह हतोत्साह करन के लिए, उन्ह झेपाने क लिए एक विरोधी न खडे हाकर कहा—"क्यो प्रधानमन्त्री जी, क्या यह सच है कि आपके पिता गधे की गाडी हाँका करत थे और बचपन म उस गधे की सफाई का काम आपके जिम्म था ?"

भीड की मनोवृत्ति हल्के मनोरजन की होती है और हँसने का मौका मिल, तो सब उसका फायदा उठाते हैं। उस विरोधी की बात सुनकर सबने तालियाँ बजा दी और कहकहा से आकाश गूज उठा। कोई साधारण आदमी होता, तो झेप जाता और अपन भाषण का प्रभाव खो देता, पर प्रधानमन्त्री जी पूरे खिलाडी थे, झेंपना तो दूर, जनता के साथ खुद भी खूब हँसे और बोले—'यह बात ठीक है कि मेरे पिता गधे की गाडी हाका करत थे और मैं गधे की सफाई किया करता था, वह गाडी तो बहुत दिन हुए टूट गयी, पर (उस विरोधी की तरफ इशारा कर) यह गधा अभी तक जिन्दा है और लोगो की फुलवारियाँ खराब करता रहता है।"

प्रधानमन्त्री जी की बात सुनकर कुछ न पूछिए कि क्या हुआ ? हसत-हसते लाग लोट-पोट हो गय और वह विरोधी झेपकर ऐसा भागा कि दिखाई ही नहीं दिया। प्रधानमन्त्री जी फिर अपन भाषण मे डूब गये।

उनका किस्सा पूरा हुआ, तो झट से एक-दूसरे साथी बोले—"हाँ जी, नहले पर दहला न मारे, तो राजनीतिज्ञ क्या ? लो, ऐसा ही एक किस्सा मैं सुनाता हू । दूसरी लडाई से पहले की बात है। इगलड म मन्त्री-मण्डल बदला, तो नये प्रधानमन्त्री श्री रैम्जे मकडोनाल्ड अपने मन्त्रिया मिनिस्टरो के साथ मच पर आय । हारे हुए विरोधिया के नेता न उन्ह बधाई देत हुए कहा—' बधाई है आपको । आइए, पधारिए और अपनी भेडा का मच पर बठाइए ।"

सब लोग हस पडे, पर उधर ध्यान न देकर नय प्रधानमन्त्री न कहा—"जी, बैठा रहा हू, पर पहले आप अपने गधा को तो नीचे उतारिए ।' ऐसी हँसी हुई, ऐसी हँसी हुई कि बस कुछ न पूछिए और तालिया भी खूब बजी ।

इनकी बात पूरी होते ही एक सज्जन बोले—"हम तो समझत थ कि गधा एक बेहूदा जानवर है, पर इन सस्मरणा से तो मालूम होता है कि वह ससार भर म बहुत लोकप्रिय है ।'

एक सज्जन ढीले-से बैठे थे, उभर कर बोले—"हाँ जी लोकप्रिय तो है ही, तभी तो बडे-बडे लोग बातचीत मे उसका सहारा लेते हैं । लो, एक और सस्मरण सुनो । दूसरी बडी लडाई के बाद की बात है । फ्रास म थाडे थोडे दिनो म कई बार मन्त्री-मण्डल बदलन के बाद जनरल दगाल राष्ट्रपति चुने गये और उन्हाने पार्लियामेंट से बहुत-से अधिकार ले लिए । उन्ह अधिकार देने का कानून जब पास हुआ, तो विरोधी दल के लोगा ने हल्ला करत हुए कहा—"इस देश मे अब डिक्टेटरशाही आ गयी है । अब तो भौकन की भी आज़ादी नही रही ।"

नये राष्ट्रपति ने पूरी गम्भीरता से उत्तर दिया— प्यारे मित्रो, हमारे दश म भौंकनवाला को पालन का शौक हमेशा रहा है पर रेकनेवाला को हमारे देशवासियो ने कभी पसन्द नही किया ।' राष्ट्रपति का मतलब यह था कि मैं सबको बोलने की आज़ादी तो दूगा, पर दश को नुक्सान पहुँचाने वाला गधापन बर्दाश्त नही करूँगा । सुनकर विरोधिया का जाश ठडा पड गया और वे समझ गये कि अब हुकूमत की बागडोर एक मजबूत

आदमी के हाथो म आयी है।

इसके बाद भी मामला खत्म नही हुआ और बहुत देर तक गधा की ही बाते होती रही, एक के बाद एक, अब बताओ तुम कि जब गधे पर इतनी मनारजक बातचीत हो सकती है, तो तुम्हारे इस प्रश्न का क्या अथ है कि क्या बात करे? किस बार मे बात करें?

लो चलते चलते तुम्ह अनुभव का नुस्खा देता हू कि जब दिल-दिमाग गुमसुम हो, किसी काम मे जी न लगता हो, बात करने की भी तबीयत न हो, वातावरण तक उदास हा तो मुह पर हाथ फेरकर यह देखो कि हजामत तो नही बढी है और उठकर हजामत बनाओ, (स्त्रिया मुह हाथ धोकर बाल बना लें) कपडे बदलो और किसी दोस्त के पास जा बैठो या फिर किसी पाक म। बस थाडी ही देर म गुमसुम तबीयत चहक उठेगी और तुम्ह बाहर भीतर ताजगी अनुभव होगी।

इस बारे मे रहस्य की बात यह है कि मनुष्य की मूल प्रवृत्ति विपाद, अवसाद या दुख नही, आनन्द और प्रसन्नता है। मनुष्य पर छाया बडे-से-बडा दुख और घने-स घना अवसाद कभी स्थायी नही होता। उसकी नीव इतनी कमजोर होती है कि थोडा समय बीतने पर वह दुख अवसाद स्वय छितराने लगता है। मनुष्य की आखें लाख आसू बहायें, वे आसू कितन भी दुख भरे क्यो न हा, मनुष्य के होठा की मुस्कान नही छीन सकत—उसको अधिक देर दबाकर नही रख सकते।

1930 म जब मैं स्वतन्त्रता सग्राम के एक सैनिक के रूप मे पहली बार जल गया, तो मेरा खयाल था कि जल एक मातमी जगह होगी और जहां-तहा उदास बैठे, वे लोग जो विभिन्न अपराधो मे जेल काट रहे है, रोत रहते हागे, पर वहां जाने पर मुझे एक मस्त और व्यस्त वातावरण मिला। इसस भी बढकर बात यह है कि जिन कैदिया का दस दस और बीस-बीस साल क़द की सख्त सजा थी, वे छोटी कैद वाला से अधिक प्रसन्न थे। वे त्योहारो पर ड्रामे करते थे, नाचते थे, गाते थे और हुडदग मचाते थ।

यह सब क्या है? यह और कुछ नही, मनुष्य के भीतर जो अजेय

प्रसन्नता का स्वभाव-सस्कार है, उसका उद्घोष है। जीवन म आंसू भी हैं और मुस्कान भी, पर आसू क्षणिक हैं, मुस्कान स्थायी। आंसू का महत्त्व बहुत है, वह न हो तो मनुष्य पशु बन जाये, पर आसू ही आंसू जीवन म हो, तो वह जीवन ही न रहे। सचमुच वे अभागे हैं जिनके लिए आंसू परिस्थिति की विवशता नही, आदत की विवशता है। लोकभाषा म उनके लिए एक गाली है—रोनी सूरत। तो उचित है कि हम समय पर रोयें, पर रोनी सूरत न बनें।

जब अष्टावक्र हँसे थे

• •

"बेटा, देखकर तो ला, तेरे पिता अभी तक नही आये, क्या बात है? कई पहर बीते वे राजा की सभा मे गये थे, ऐसी भी मरी क्या सभा कि बैठी तो फिर उठने का नाम ही न ले!"

अष्टावक्र कही बाहर से आये, तो उनकी माँ ने कहा और सुनते ही वे राजा के सभा भवन की ओर चल पडे। पहुँचे, तो देखा सभा लगी है और किसी गम्भीर प्रश्न मे सब इतने डूबे हैं कि वाद विवाद का कोलाहल नही, सन्नाटे की शान्ति ही वहाँ छाई है।

सबका ध्यान अष्टावक्र की ओर गया। देह आठ जगह तुडी मुडी, कमर मे कूबड, तो पैरो मे गठिया, गर्दन मे बाँका, तो पर कडकौवा, दोनो हाथ यो कि कोई नृत्य की मुद्रा, मुह दीपक सा फटा फला, तो आखे पनियल और यो सब मिलाकर यह एक जीवित गोरखधन्धा अष्टावक्र!

देखकर सब हँस पडे—राजा भी, आचार्य भी, ऋषि भी। अष्टावक्र ने उन्हें हसते देखा कि वह भी खिलखिलाकर हँस पडा। राजा को इस हास मे, कहने को सभा की, पर असल मे राजपद की अवज्ञा लगी। चिढ कर उसने पूछा—"तुम क्यो हँसे?"

"और आप क्यो हँसे?" तडाक से अष्टावक्र ने उनका प्रश्न उन्हे लौटाया, तो कुढकर राजा ने कहा, "हम तो तेरा यह मडकौआ रूप देखकर हँसे, पर तू क्यो हँसा, बता?"

अष्टावक्र ने अपनी देह के आठो जोड मचकाकर कहा, "मैं यह देखकर हसा कि राजा के चारो ओर चमकारो की सभा कैसी सजी है!"

"चमकारो की सभा? अरे अभद्र, ऋषियो और आचार्यो की सभा

को तू चमकारा की सभा कहता है !" गरजकर राजा न कहा ।

नम्र हो अप्टावक्र ने कहा, "महाराज, मैं आपका, ऋपिया का और आचार्यों का सम्मान करता हूँ, आप सब मेरी विनम्र वन्दना स्वीकार करें, पर यह तो मैंने सत्य कहा कि सभा चमकारा की है !"

'कस रे ?" सभा के मध्य म एक प्रश्न तडका । शान्ति स अप्टावक्र ने कहा, यह ऐसे महाराज कि चमकार चमडे को देखता है जीव क जीवन से अधिक उसके चमडे को महत्व देता है, उसका ध्यान उसी पर केन्द्रित रहता है और आप लोगा ने भी मेरी देह के चमडे की कुरूपता ही देखी-परखी, भीतर की नित्य-सुन्दर आत्मा पर तो आपका ध्यान ही नही गया। इस दशा मे मैंने आपको चमकार कह दिया, तो क्या यह कोई अभद्रता हो गयी !"

कथा तो अभी बहुत शेप है, पर आज, बस यहाँ तक ही । पाठक की जिज्ञासा न भटके, तो इतना और कि सभा ने सब सम्मति स अन्त मे अप्टावक्र को ऋपि मान लिया ।

ठीक है, अष्टावक्र ऋपि मान लिये गये और सभा विसर्जित हो गयी, पर उस सभा म अष्टावक्र न समाज के जिस चमडा-पन्थी दृष्टिकोण की धज्जियाँ उडाई थी वह फिर भी ज्यो का त्यो जीता-पनपता रहा है ।

पण्डितराज जगन्नाथ सचमुच पण्डितराज थे । साहित्य के सूय, जीवन के भण्डार, पर वे गऊमाता पण्डित न थे कि चौडी चुटिया फटकारते जीवन काट लेते । वे उनमे थे, जो जीवन काटते नही, बिताते नही, उसे जिया करते हैं । बात यह है कि वे आचाय भी थे और कवि भी ।

अपनी कविता और व्यक्तित्व से प्रभावित राजवश की एक मुस्लिम कन्या से उन्होंने विवाह कर लिया था । उस दिन ही नही, आज भी आश्चय एव गौरव से सोचने की बात यह है कि मुस्लिम शासन और आतक के उस युग मे एक साहित्यकार की यह कितनी बडी विजय थी, पर इस विजय के उपलक्ष मे देश के पण्डित समाज ने उन्हें जातिच्युत कर अपवित्र और म्लेच्छ घोपित कर दिया ।

समाज पर पण्डितो का प्रभाव था । पण्डितराज यहाँ-वहाँ लाछित होने लगे । साथ मे राजवश की कन्या, एक मुग्ध मानवी, पण्डितराज

अपमान के वातावरण म उसका रहना कैसे सहे ? शायद पण्डितराज ने घर लौट जाने, उन्हें भूल जान को भी उससे कहा, पर वह प्रणय की अभिनेत्री नहीं, प्रणयिनी थी और ठहरिए, मैं कह रहा हूँ वह सती थी—सावित्री के दश की कन्या। उसने सोच-समझकर पति का निर्वाचन किया था। वह किसी की हो चुकी थी, उसे अब किसी का होना न था, पर समाज ने उसके वर और वरण दोनो का जीना मुश्किल कर दिया था। उसे सावित्री का सतीत्व नहीं, केवल जन्म-जाति ही दीख रही थी।

पण्डितराज ने जीवन समाप्त करने का निणय कर लिया और जो उनका निणय था, वही उनकी पत्नी का निणय था। वह जीने मे साथ रही, तो मरन म वहाँ रहती। दोना चल पडे। यह मृत्यु-यात्रा थी, लौकिक वीरा की मत्यु शहादत के रूप मे आती है, तो धमवीरो की मृत्यु मुक्ति के रूप म। उन्हें मरना था, तो मरना ही न था मुक्त होना था।

व गगा के घाट पर आ बैठे। भीड भी आ जुटी। पण्डित विद्वान् कटु व्यग स, तो जन साधारण कौतुक से। वाह, क्या दृश्य है? दीप्तिमान पण्डित राज विराजमान हैं और उनके बायी ओर सुशोभित है उनकी लावण्य-पुण्य प्रोद्भासित लवगलता पत्नी। उनके पैरो के नीचे घाट की सीढियाँ और तब गगा का अजस्र बहता अमृत प्रवाह!

पण्डितराज भाव-विभोर हो उठे और हरहराकर उनके मुख से निकल पडी गगा की यह स्तुति—

> समद्ध सौभाग्य सकल वसुधाया किमपितन,
> महेश्वयम् लीला जनित जगत खड परशो
> श्रुतीना सवस्व सुकृतमथ मृत सुमनसाम्
> सुधा सौन्दर्यं ते सलिलमशिव न शमयतु।

भक्ति की लहर ने गगा की लहर को खीच लिया और गगा का प्रवाह एक सीढी ऊपर चढ आया। लोकश्रुति है कि पण्डितराज एक-एक श्लोक पढते रहे, गगा का प्रवाह एक एक सीढी चढता रहा और अन्त म सबने देखा कि गगा माता स्वय अपने पुत्र के निकट आ गयी है।

तब पण्डितराज ने अपने भक्ति विह्वल-कण्ठ स गाया।

विभूषितानगरिपूत्तमागा
सद्य कृतानेक जनार्ति भगा ।
मनोहरोत्तु ग चलतरगा
गगा ममागान्यमली करोतु ।

सबने देखा कि गगा के प्रवाह मे से एक नारी हाथ गोद लेने की मुद्रा मे निकल आया है। सब स्तब्ध हैं, पर सरलता से पण्डितराज कहते हैं— "जिसे छाडकर जाति गगा की गोद मे नही गया, उसे छोडकर माँ, तेरी गोद में अकेला कसे आऊँ ?"

आश्चर्य-विमुग्ध हो, सबन देखा कि दूसरा हाथ भी निकल आया है और पण्डितराज अपना बायाँ हाथ पत्नी के कटि प्रदश तक लपेटे माँ गगा की गोद मे नन्हे बालक की तरह समा गये हैं। सारा वातावरण गूज उठा —पण्डितराज जगनाथ की जय !

श्रद्धालु की दृष्टि मे यह मुक्ति है और तार्किक की दृष्टि म आत्मघात। मुझे न श्रद्धालु का समथन करना है, न तार्किक स शास्त्राथ, कहना है सिर्फ यह कि पण्डित-समाज को दृष्टि मे न समायी पण्डितराज की धमश्रद्धा और न महान् व्यक्तित्व और न उनकी समर्पणमयी पत्नी का अजेय सतीत्व, उसे दीखता रहा कवल पण्डितराज का कल्पित 'धमद्रोह' और उनकी पत्नी की अस्पश्यता म्लेच्छता—तब अष्टावक्र ऋषि की भाषा म व सब पण्डित और समाज के दूसरे कणधार चमकार ही तो थे ! चमकार कोई जात बिरादरी नहो, चमडा परखी सस्कार से घिरे इसान मानव !

क्या हम उनकी निन्दा करें ? उन्हे बुरा भला कहें ? करें-कहे, पर यह जान कर कि इस सस्कार की नीव कितनी गहरी है। युग-युगा पहले सस्कृति सभ्यता के विकास की उषा मे जब मनुष्य ने ईश्वर की खोज की, उसका अनुभव ज्ञान पाया, तो एक महत्त्वपूण भावना का जन्म हुआ। वह थी मनुष्य मात्र की एकता। ईश्वर सबका पिता है, हम सब उसकी सन्तान है, तो मानव मानव भाई भाई।

इस ज्ञान के हजारा-लाखा साल बाद जन्मे जगद्गुरु शकराचाय और उन्होंने अद्वैत दशन का प्रतिपादन किया। इसके अनुसार जीव और ब्रह्म एक हो गये, मानव मानव नही जीवमात्र ईश्वर का स्वरूप, ईश्वर हो गया !

यही शकराचाय एक दिन गगास्नान से लौट रहे थे। ब्रह्मवेला थी। नगर की स्वच्छता का उत्तरदायी भगी भाई अपनी झाड़ू से सड़क की सफ़ाइ कर रहा था।

अद्वत दशन के प्रचारक जगद्गुरु पास से निकले, तो उनका मन अरुचि से भर गया। उस भगी से बोले—"ए, माग से दूर हटो।"

भगी भी पहुँचा हुआ था। आखिर काशी का भगी—काजी के घर के चूहे भी होशियार होते हैं। बोला—"महाराज, देह से देह को दूर करना चाहते हो या आत्मा से आत्मा को? यदि पहली बात है, तो देह जड है महाराज! उसका दूर क्या, समीप क्या? और जो दूसरी बात है, तो स्वामी जी, आत्मा-आत्मा एक है, एक से एक की दूरी कैसी?"

अब तो चकराय जगद्गुरु, पर वे चकराये या टकराये, यह निश्चित है कि जिस क्षण उन्होंने स्वच्छता के उस अधिष्ठाता से कहा—ऐ, माग से दूर हटो! उस समय वे चमत्कार थे, क्योंकि उनका ध्यान उन पण्डितो की तरह बाहरी उपकरणो म ही उलझा था।

जगद्गुरु के हजारो साल बाद जन्मे चारित्र्य-चक्रवर्ती एक मुनि जी। उनकी बात सुनी है आपने? वे बहुत ऊँचे सन्त थे और सब कुछ तो उन्होंने त्यागा ही, जीवन का मोह भी त्याग दिया, अपनी मृत्यु को अपने हाथ में कर लिया और महीनो पहले घोषणा कर कि हम जा रहे हैं, अन्न जल का त्याग कर या चले गये, जैसे कोई यात्री किसी जक्शन पर गाडी बदल ले। उन दिनो म क्षण-क्षण मृत्यु उनके निकट आ रही थी, पर वे पूर्णतया शान्त थ, निर्विकल्प थे, जैसे जीने मरने से उनका कोई सम्बन्ध ही न हो!

जो राग विराग, जीवन के मोह और मृत्यु के भय से छूट गया, उसका किसी जकडन से क्या सम्बन्ध? पर यह सन्त भी अन्त तक जकडा रहा चमडा-पन्थी डोर से और यह कहकर भी कि हम पहले जन्मो मे दो बार हरिजन की देह धारण कर चुके हैं हरिजनो के मन्दिर प्रवेश पर हा न कह पाया। हाय रे, हमारे चमडा-पन्थी सस्कार कि हम जीवन का मोह छोड पायें, पर जीवन के घेरे का मोह हमे साँप सा लिपटा ही रहे!

1917 की क्रान्ति और उसके बाद की प्रति क्रान्ति से निपट कर जब रूस के नवनिर्माण का काय महान् लेनिन ने अपने हाथो मे ले लिया,

तो रूस के पास क्या था ? रूस औद्योगिक दृष्टि म खोखला था और उसका औद्योगीकरण होना था, पर मशीनें तो अमरीका के पास थी और व उनके मूल्य मे डालर देन से मिल सकती थी। डालर मिलने का तरीक़ा यही था कि रूस अमरिका के हाथ अपना कोइ सामान बेचे और उसके मूल्य म उस जो डालर मिलें, उनसे वह मशीन ले ले।

रूस के पास क्या था, जो वह अमरीका के हाथ वेचे ? रूस के पास जानवर थ और जगल थे। बस जगलो की लकडी, जानवरो का मास, खाल और दूध स बनाया पनीर रूस ने अमरीका भेजना आरम्भ किया और वदले म मशीनें आती रही। एक डालर का भी कोई दूसरा सामान नही आया।

सारे देश न कई वप तक तुली हुई रोटी खायी, खुरदरा कपडा पहना और बिना डॉक्टर के कहे कभी किसी ने दूध की एक बूद भी नही पी।

इसके विरुद्ध 1947 मे भारत स्वतन्त्र हुआ, तो दूसरे विश्व-व्यापी महायुद्ध के कारण देश के बाजार विदेशी सामानो से खाली थे और हम स्वदेशी जीवन जी रहे थ। यहाँ की गोरी मेम तक स्वदेशी छीट का उपयोग करना अपना सौभाग्य मानती थी।

रूस की तरह हम खोखल न थे। पिछली लडाई म हमने इग्लड और अमरिका को जो सामान दिया था, उसका रुपया हम लेना था और यह अरवो म था। हमने पहला काम यह किया कि कोइ 4 अरब रुपये का क्रीम, पाउडर, वनस लिपस्टिक, घडी —वेण्डर, फाऊण्टेन पन, चमकदार कपडा खिलौने और जाने क्या-क्या खरीद कर अपन बाजार भर दिय।

1917 म स्वतन्त्र होकर रूस न पूरे 33 वप बाद 1950 म पहला रेफ्रीजिरेटर बाजार म देखा, पर यह स्वय रूस का बना रेफ्रीजिरटर था। साफ है कि रूस न चीज बनान वाली मशीने खरीदी और हमन बनी बनायी चीजें।

क्या उन घडियो म इन चीजो को खरीदते समय हमारे राष्ट्रीय दिमाग पर वही चमडापन्थी वृत्ति सवार न थी, जो आन्तरिकता को भूल कर बाह्य मे उलझ जाया करती है ?

कवि श्री अकबर ने इस वृत्ति का एक चित्र अपनी इन पंक्तियों में दिया है—

> बूट डासन ने चलाया,
> मैंने एक मजमूं लिखा।
> मुल्क में मजमूं न फैला,
> और जूता चल गया !!

"जूता चल गया" में एक चमत्कार है और साम्प्रदायिक वैमनस्य का इतिहास भी सुरक्षित है, पर इसे छोड़कर उनके मजमून का देश में न फैलना भी तो एक घटना है। डासन का चमकदार बूट हमें आकर्षित कर सका, पर अधिकारी विद्वान् के लेख की उपयोगिता नहीं, यह हमारी कैसी चमड़ापन्थी वृत्ति है ?

उस दिन एक मित्र दौड़े दौड़े आये—"भाई साहब, चलिए, आपके लिए बहुत बढ़िया किताबें खरीद कर लाया हूं।"

जाकर देखी, तो सब कूड़ा ही कूड़ा। कुढ़कर पूछा—"ये सब कहाँ से उठा लाये ?"

बोले—"उठा कर नहीं, छांट कर लाया हूँ। उनके 'प्रोटेक्टिंग कवर' तो देखिये, क्या शानदार हैं।"

कई बार ऐसे लोग आते हैं, जो मेरे द्वारा सम्पादित पत्रों की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं और तब यह परामर्श—"टाइटिल पर आप सिनेमा अभिनेता का चित्र छापा करें, तो इससे तुरन्त बिक्री बढ़ेगी भाई साहब !"

वे एक प्रतिष्ठित विद्यालय के आचार्य हैं, मेरे मित्र हैं। कोर्स की एक बेकार पुस्तक के बारे में मैंने उनसे पूछा—"ऐसी पुस्तकें कोर्स में लग कैसे जाती हैं ?" बोले—"जैसे हमारे विद्यालय में लग गयी। इसके प्रकाशक हमारे यहाँ आये। मेरे साले साहब की सिफारिश लाये। क्लास-टीचर के सिर हुए, मेरे पीछे पड़े, बस पुस्तक लग गयी।"

मैंने कहा—"तो साफ है कि एक अच्छी पुस्तक से आपके विद्यार्थी वंचित हो गये और इस तरह उनके जीवन निर्माण कार्य को गहरा धक्का लगा ?"

वे बोले—"हाँ जी, यह तो है ही।"

उस मित्र की शानदार पुस्तकें देख ली थी, उन मित्रो की सलाह सुन लेता हूँ और इन आचायजी का उत्तर भी सुन ही लिया और तब सोचता हूँ—क्या य सब उन्हो म नहो है, जिन्ह देखकर ऋषि श्री अष्टावक्र हँसे थे ?

और क्या जी, य ही बेचारे क्या ? व पुरुष, जो क्लब से लौटकर सिर्फ़ दूसरा की स्त्रिया का सौन्दय बखानते हे, उनके गुणो की चर्चा नही करते, व स्त्रियाँ जो उत्सव से लौटकर दूसरा की स्त्रिया क वेश विन्यास, साडी-चप्पल म ही उलझी रहती हैं और वे पत्रकार जो उत्सवो की बाहरी टीपटाप का वणन करने म ही अपना विवरण पूरा कर देत हैं और क्या हैं ?

और यही यह भी कि वह जो लुटेरा हमारे देश को लूटने आया और हमारे वीरो को देखकर घबराया, तो उसन अपनी फौजो क आगे गायें कर दी। अब हमारे वीर है कि गौओ को देख रहे है, शत्रु की चाल के सफल होने पर देश के सवनाश को नही ! उनक विश्वास का शत शत वन्दन, पर क्या वे उस समय चमकार ही न थे, जो चमडे को बचा रहे थे जीवन का नाश सह कर ?

चमडे की रक्षा करने के लिए जीवन का नाश सहना क्या ?

जीवन की रक्षा करने के लिए चमडे की, अन्तर क लिय बाह्य की, चेतन के लिए जड की रक्षा का क्या अथ है ?

अमेरिका के जनरल ग्राट उत्तरी राज्यो म सर्वोत्तम सनिक अधिकारी थे। उन्होंने कभी आग बढाया कदम पीछे नही रखा और जिस मोर्चे पर गय, जीत कर ही लौट। प्रेसीडेन्ट अब्राहम लिंकन उनक बहुत प्रशसक थे।

इन सब गुणा के साथ उनमे यह भी एक आदत थी कि वे काफी शराब पीत थे। एक दिन लिंकन के मुह से ग्राट की प्रशसा सुन, किसी धार्मिक पुरुष ने कहा— आप उस पापात्मा की तारीफ करत हैं, जो सदा शराब म गुच्च रहता है ?"

प्रेसीडेन्ट ने ठडे व्यग से कहा— 'महाशय, जनरल ग्राट जो शराब पीत हैं, आप उसका नाम और पता मुझ बताइय, जिससे मैं उसे दूसरे सेना-

पतियो के लिए भी उपलब्ध करा सकू।"

साफ है कि एक आदमी की साधारण कमजोरी पर हम ध्यान दें या असाधारण प्रतिभा और क्षमता पर ?

वद पढन पर अछूतो के कान म गरम शीशा भरने की व्यवस्था देने वाले मनु के मस्तिष्क म भी एक बार इस सत्य ने अपनी झाँकी दिखाई थी और तब उनकी कलम से निकल पडा था—

न मास भक्षणे दोषो, न मद्ये, न च मैथुने,
प्रवत्तिरेषा भूताना, निवृत्तिस्तु महाफला ।

अर, मास खाने मे, शराब पीने म, स्त्री पुरुष के सहवास मे कोई दोष नही है। य तो प्राणियो की स्वाभाविक प्रवृत्तिया है, इनम पाप-पुण्य क्या हाता है ! हाँ, कोई इनसे बचे, इनका त्याग करे, तो उस बहुत बडा फल मिलता है, वह महान है !

मनु के इस सत्य को युग-पुरुष गाधी ने भरपूर समझा था।

आगाखा महल म नज़रबद रहते समय गान्धी जी ने सरोजनी नायडू पर बहुत ज़ोर डाला कि वे मास खायें और लम्बी बहसो के बाद उन्हे अडा खाने को तयार कर ही लिया। बात यह हुई कि श्रीमती नायडू को मास खान का आदत थी और उसके बिना उनके शरीर मे दद रहने लगता था। गाधी जी स्वाभाविक प्रवत्तियो से परिचित थे और अपने साथियो मे उनका शमन वहो तक करते थे, जहा तक व राष्ट्रीय कार्यो मे बाधक हो।

अस्पश्यता का गहरा और प्रभावपूण विरोध कर उन्हाने सामाजिक चमारवाद की जडे तो काटी ही, पर विभाजन के बाद अपहृत स्त्रियो की पवित्रता घोषित कर अष्टावक्र के हास्य को भी एक अद्भुत चमक दे दी।

जीवन का यह वो चौराहा था, जहाँ भगवान् राम झेंप गये थे। हनुमान के द्वारा सीता के लकावास की पूरी रिपोट उन्ह मिल गयी थी, फिर भी लका विजय के बाद उन्होंने अग्नि-परीक्षा का स्वाग रचा और इसके बाद भी एक धाबी के अपवाद पर सीता सती को जगल मे धकेल दिया।

राम इस देश मे एक नयी समाज व्यवस्था की स्थापना कर गये, उसे स्थिरता और शान्ति दे गये, पर देश के मानस को चमडे से भी जकड गये

—ऐसी जकड, जो हजारा साल म भी ढीली नही पड पा रही। चमडे की यह जकड कितनी मजबूत है, कितनी क्रूर है, कितनी कुरूप है?

आइए, स्वतन्त्र भारत के नागरिक के रूप म हम सोचें कि हम अपने स्वभाव को चमडे की इस जकडन से बचाना है और मनुष्य की निजी बाता को उसके लिए छोडकर उसके गुणो का लाभ लेने की वृत्ति अपने मे प्रस्फुटित करनी है।

दोपाये-चौपाये

• •

"नमस्ते भाई जी !"

"नमस्ते भाइ, नमस्ते ! औरो को एक, तो तुम्हें दो दो !"

"क्यो मुझे दो क्यो—ऐसी क्या खता हुई मुझसे, जो एक की जगह दो नमस्ते की ठडी फाँसी दे रहे हो मुझे ?"

"ठडी फासी ? यह ठडी फासी क्या होती है भाई ? मगल पाडे से सरदार भगतसिह तक के शहीदो की फाँसियो का वर्णन तो मैंने भी पढा है, पर ठडी फाँसी की चर्चा उसमे कही आयी नही, तो पहले यह बताओ कि यह ठडी फासी भी नही जानते कि क्या होती है ? तो भाई जी, नाराज न हो, तो एक बात कहूँ ?"

"जरूर कहो भाई, नाराजी की इसमे क्या बात है। बात तो कही भी जाती है, सुनी भी जाती है ?"

'नाराजी की बात नही है तो मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि तुम अगर यह नहो जानते कि ठडी फासी क्या होती है तो यह भी नही जानते कि फाँसी क्या होती है—मगल पाडे से सरदार भगतसिह तक ही नही, सारी दुनिया के शहीदो का फासीनामा एक बार नही, तुम चाहे सौ बार पढ लो।"

"चलो, तुम्हारी ही बात ठीक सही कि न मैं यह जानता हूँ कि फासी क्या होती है और न यही कि ठडी फासी क्या होती है, अब तुम ही बताओ यह सब कुछ। मालूम होता है तुम आजकल फासी पर डाक्टरेट लेने की तैयारी कर रहे हो !"

'खैर, डाक्टरेट तो मैं क्या लूगा फाँसी पर भाई जी, पर हा फासी

और ठडी फाँसी का भेद जरूर तुम्हे बताऊँगा। बात यह है कि
समाज से कुछ दिन के लिये दूर रखना हो, उसे जेल की सजा दी ज
है और भाई जी, जिसे हमेशा के लिए दूर रखना हो, उसे फासी दे दी ज
है—गला घाटकर मार दिया जाता है। यह हुई फासी, पर ठडी फा
यह है कि अपनी आखा से तो दूर न हो, पर दिल से दूर कर दिया जा
मुहावरे म इसे ही कहत हैं दिल से उतार देना, तो जब तुमने एक की ज
दो नमस्त की, मुझे डर लगा कि तुम मुझे ठडी फासी तो नही दे रहे हो

'वाह, यह ता तुमने वडी बारीक बात बतायी। सचमुच फाँसी अ
ठडी फासी के भेद पर कभी मेरा ध्यान ही नही गया था। अच्छा तो छो
फासी और ठडी फाँसी के इस पचडे को और मसूरी की कोई खास खब
सुनाओ। तुम तो इस बार गरमियो मे कई महीने वहा रहे।"

'मसूरी की खास खबर ? भाई जी, मसूरी की खास खबर तो है औ
मैं उसे तुमको सुनाना भी चाहता हूँ, पर क्या करूँ शम आती है।"

"शम आती है ? किस बात की शम आती है ?"

"जी आपसे अपनी बात कहते शम आती है ?"

'मालूम होता है वहाँ कुछ कुकम किया है तुमने और तुम्हारी पिटा
हुई है। ठीक है, इस हालत मे शम आनी ही चाहिए।"

"नही जी, ऐसी कोई बात नही है, पर क्या करूँ, शम तो आती ही
है उसे कहने म। वह बात मेरी बात हे पर उस बात म मेरा अपना कुछ
नहीं है और कुछ है भी। हा-हा, एक पहेली-सी लगती है यह बात, पर
जीवन का यह भी एक अजीब पहलू है कि वह बात मेरी ही तरह तुम्हारी
भी है और लो, इससे भी बढकर बताऊँ तुम्ह एक बात कि वह बात मेरी
तुम्हारी क्या, सबकी ही है।'

"अजीब इद्रजाल है तुम्हारी बात कि वह बात तुम्हारी है और तुम्हारी
नही भी है, बात तुम्हारी-मेरी है और वह बात सभी की है। अरे भाई,
फिर वह बात क्या है, चा चो का पूरा मुरब्बा है, पर खैर, वह कुछ भी
है, उसे तुम अपने मुखारविन्द से उचारो तो।"

'जी हाँ, कह तो रहा हूँ, पर कहा तो मैंन कि कहते शम आती है,
वह बात ही ऐसी है कि सुनकर तुमको भी शम आये, पर शम आये या कुछ

हा, बात तो अब कहनी ही है, तो लीजिए कहता हूँ वह बात—

मसूरी म उस दिन मैं सुबह ही सुबह घूमने निकला, तो चौधरी साहब मिल गय। नाम तो उनका मैं जानता नही, पर काम उनका है सडक साफ़ करना। बरसा से व भी मसूरी आते है सीजन पर काम करने और मैं भी, तो बस दखा-देखी की जान-पहचान है। मिले तो नमस्त हुई और बात तो कुछ थी नही, पर बात तो कुछ करनी ही थी, इसलिए पूछा—'कहिए, चौधरी साहब, आप कितने साल से मसूरी आ रह है ?'

अपनी दहाती टोन म चौधरी साहब बोले—'अजी बाबू जी, साल क्या, उमर ही बीतगी यहाँ आतो जात्ता। ला, दनियो बरस सै तो तम (तुम) ही देख रे (रहे) अब नू समझो अक (कि) 40 45 बरस होगे हागे।"

मैंन कहा— चौधरी साहब, फिर तो आपने अग्रेजा के समय की भी मसूरी खूब देखी है।"

चौधरी साहब बोले— अजी खूब! पर बाबू जी, उस जमाने की मसूरी म कुछ हार (और) ही बात थी।'

मैंने पूछा—'चौधरी साहब, अब की और तब की मसूरी मे क्या खास फक ह, आप यह बताओ।'

बोल—'अजी देखो आव तो तब भी यहाँ दुपाये ही थे होर (और) अब भी दुपाय हा आव, पर बाबजी, तम बुरा ना मानियो, अब आव तो दुपाय, पर काम चुपाया (पशुओ) का करैं।'

चौधरी साहब की बात सुनकर मेरा दिमाग गुम्म मे भिना गया। मन मे आया इह खरी खोटी सुनाकर चलता बनू, पर अपने को ठडा कर मैंन पूछा—'बात ता आपकी बहुत कडवी है, पर जरा इसे खालकर बताओ आप।'

उसी ठड स्वर मे चौधरी साहब बोले—'अजी इसमे खालन-भेडन की क्या बात है, या तो बिना किवाडो की कोठडी है, अक जो कुछ भित्तर (भीतर) साई बाहर। ला फिर तमन पुच्छा (पूछा) है, तो तुम्ह बताऊ ही। पहल म्हां (यहा) ऐसे आदमी आव थे, जो सिगरेट की खाली डिब्बी भी जेब म रख ल थे, सडक पै नी (नही) डाल्लै थे अर (और) अब एसे आव अक चवन्नी की मूगफली ले ल, अर एक मील तक सडक सजात्ते

चले जा। अर तुम म्हारे सैं के पुच्छो, रोज अपणी आँखो से नी देखते क्या ? वावूजी, पहल मील भर की झाड़ू मे सेर भर कूडा लिकडे था। अर अव चार गज का कूडा धकेलने मे ही कन्धे उतर जा म्हारे (हमारे) अर ला, अपणे सामण ही दक्खो, अक पान की पीक थूक थूक क सारी सडक उगाल दान वणा रक्खी अक नी ? अब वतावो य काम दुपाया के है या चुपाया के ?"

'चौधरी साहव अपने काम म लग गय और मैं चल पडा, पर भाइ जी सच कहूँ आपसे, मुझे ऐसा लगा कि मैं दुपाये आदमी से चौपाया पशु हो गया हूँ और मैं क्या हो गया हूँ हम सव हो गय हैं। असल मे यह भरी-आपकी या इसकी उसकी वात नही है, हम सवकी वात है, यानी हमारे राष्ट्रीय चरित्र की वात है और वताओ तुम ही कि उसे किसी स कहते शम आती है या नही ?"

"हाँ भाई, शम की तो वात ही है यह, पर लो मैं भी तुम्ह अपना एक अनुभव सुनाऊँ। 15 अगस्त 1947 को देश स्वतन्त्र हुआ, तो रचनात्मक सेवा की दष्टि से मैंने यह व्रत लिया कि एक महीने मे कम से कम एक दिन मैं नगर को स्वच्छ बनाने के काम म भाग लिया करूँगा। इस काम का नक्शा मैंने यह वनाया कि दोपहर वाद घर से निकलू और सडक पर जहाँ भी केले का छिलका या ऐसी कोई दूसरी चीज पडी मिले, उस उठा कर ठीक जगह कर दू। मन के भीतर भावना यह थी कि मुझे छिलका उठाकर जो लाग फेंकते देखेंगे, उनमे से यदि हर बार एक आदमी क मन म भी यह वात वैठ गयी कि सडको और सावजनिक स्थानो को साफ रखना मेरा कत्तव्य है, तो वह नागरिक हमेशा क लिए उस दोप से वच जाएगा।

इसे निभात वरसा वीत गय और इस वीच इस वारे मे वहुत-स लोगो से वहुत तरह की वाते हुइ, पर उस दिन तो एक ही झटके म व सव मात हो गयी। मैं घर से निकल कर नाले के पुल पर आ ही रहा था कि दखा एक देहाती सज्जन ने थले से निकाल कर केला खाया और छिलक को सडक पर फेंक दिया।

मैंने मन मे कहा—श्री गणेशाय नम और छिलका उठाकर नाले म फेंक दिया। अपना थला ठोक करते हुए वे मेरी तरफ वढे, तो मैंन उन्ह

गौर से देखा। लम्बा चौड़ा स्वस्थ व्यक्तित्व, उम्र मे कोई साठ साल, पर कधों और पिंडलियां मे पहलवानी सधाव और भरी पैंनी मूछा के कारण चेहरे म एक करारापन, क्पडे साफ-सुथरे और जूता पालिशिया।

मैंने कहा—चौधरी साहब, नमस्ते। पता नही उन्हाने सुना या नही, पर कडवाहट से नही, हा कडक के साथ बोले—"यह छिलका आपन नाले म क्या फेंका ?"

नम्रता से मैने कहा—"इस से कोई रपट कर गिर सकता था और चौधरी साहब, शहर को साफ रखन म तो हर एक शहरी को हिस्सा लेना ही चाहिए।"

हू ऽ ऽ ऽ ! उन्होंने प्लुत स्वर मे इस तरह हुकारा भरा कि चार-पाच सकड तक उनकी 'हू' की गूज उनके गले म भरी रही और तब उन्हान अपन मोटे होठो को कुछ इस तरह बिचकाया कि जसे लद्दाखी लामाओ क कन्टाप का रखाचित्र मुझे दिखा रहे हो। तब इठलाते से बोले —"अच्छा, आप अपनी हिस्सदारी पूरी कर रहे है !"

ठडे गले से मैंने कहा—"चौधरी साहब, यह तो सभी की ड्यूटी है।"

आवाज को जरा कडी कर चौधरी साहब बोले—"यह आपकी ड्यूटी है। क्यो ? क्या आप यहाँ सफाइ दरोगा है ?"

मैन और भी ठडा होकर कहा—"जी हाँ, आजाद मुल्क म तो हर एक नागरिक ही सफाइ दरोगा होता है।"

उन्होंने मुझे ऊपर से नीचे तक कुछ इस तरह घूरा कि जसे खुर्राट पुलिस अफसर किसी सीखतड जेब-कतरे को भाप रहा हो कि यह भोला बनने वाला छोकरा अभी तक अनखुले किसी काड का पट मे छुपाय फिरता छोकटा तो नही है और तब उन्हाने थले म से एक केला निकाल कर छीलना शुरू किया।

आदमी सबसे पहले अपन मतलब की बात सोचता है, तो मैंने सोचा, यह केला मुझे देंग और अपनी भूल के लिए माफी माँगेंग, पर मेरा सोचना बीच म ही था कि जल्दी जल्दी उन्होंने केला खुद खा लिया और छिलके को पूरे जोर से मेरे सामन फेककर बोले—"तुम्हारी यह ड्यूटी है, तो लो उठाओ इसे भी।" मैं उनकी तरफ ही देख रहा था, पर वे मेरी ओर

बिना देखे, अपने शरीर को एक झटका-सा देकर चल पडे। केले का छिलका उठाते हुए मैंन सुना, वे कहते हुए जा रहे थे—' वाह साहव वाह, ये नये सफाई दरोगा खूब रहे।"

"भाई जी, आपके चौधरी साहव तो हमारे मसूरी के चौधरी साहब स भी तेज निकले।"

'हा, निकले तो सही, पर सुनते रहो मेरी वात अभी पूरी नही हुइ है। इस घटना से मेरा दिमाग सुन हो गया। फिर भी मैं चलता रहा और दस वारह मिनट म ही नेहरू मार्किट के तिराहे पर आ गया। तभी सामने से आ गयी एक रिक्शा। उसमे 20 22 साल की एक युवती वैठी थी। उसने भी थैले से केला निकाला और छील कर छिलका मेरे सामने फक दिया। एक वार तो मन म प्रतिक्रिया जागी कि अरे छोडो भी इस सफाई आन्दोलन को, जब लाग इसका मूल्य ही नही समझते तो क्या मने ही ठेका लिया है, पर तभी मिशनरी भाव प्रवल हो उठा और मैंने छिलका उठा लिया पर फकू कहाँ? आगे बढ़कर मेंने उसे बिजली क खम्बे की जड म रख दिया। इससे निमटकर मैं मुड ही रहा था कि किसी ने मेरा हाथ छुआ। देखा, तो भौचक! वही रिक्शा पास खडी थी और वही तरुणी अपने रेशमी रूमाल से मरा हाथ पाछ रही थी। मैंने हाथ जोडे, तो बोली—' आज आपने मुझे वहुत अच्छा पाठ पढाया, धन्यवाद।"

मै उसे कुछ कह भी नही पाया था कि वह उचक कर रिक्शा म वठ गयी कि चल पडी वह रिक्शा फुर फुर, टन-टन, पा!"

' भाई जी, यह तो खूब सुनाई आपने उस चौधरी और तरुणी की वात पर क्या करूँ कहत शम आती है कि हममे एसे चौधरिया की वहुतायत है और वसी तरुणियाँ कम हैं।"

चौधरी जो सत्य को, उचित को, कत्तव्य को समझकर, जानकर भी जीवन म, आचरण मे ग्रहण न कर पाये। कहूँ जडमति, जिनके लिए नष्ट होना सम्भव है वदलना नही और तरुणी, जो सत्य का, उचित को, कत्तव्य को समझकर जानकर तुरन्त जीवन म, आचरण मे ग्रहण कर पाये। कहूँ, सुघड-मति जिनके लिए बदलना सम्भव है, सुखकर है। हमारे देश के उज्जवल भविष्य का तकाजा है कि प्रचार से या प्रहार से, जैसे भी हो, देश के जडमतियो को सुघडमति बनाया जाए।

देखें और बचें

• •

एक बड़े धनपति अमेरिकन का पुत्र छोटी उम्र में अन्धा हो गया। तब आँखों का आपरेशन नहीं होता था। इस घटना के कोई पतीस वर्ष बाद आँखों का आपरेशन निकला, तो उस लड़के के पिता ने उसकी आँखों का आपरेशन कराया।

लड़का क्या, वह तो अब प्रौढ़ हो चला था। आपरेशन सफल हो गया और उसे दिखाई देने लगा। धन दौलत की कमी न थी, वह दुनिया देखने को निकल पड़ा। महीनों बाद जब वह अपने देश लौटा, तो उससे पत्रकारों ने पूछा, "आप बहुत वर्षों तक अन्धे रहे हैं और अब आपको सब कुछ दिखाई देता है। ऐसे बहुत लोग हैं, जो काफ़ी उम्र आँख वाले रहकर अन्धे हो जाते हैं, पर आपकी स्थिति दूसरी है। आप काफी उम्र अन्धे रहकर आँख वाले हुए हैं। दुख दोनों ही है और दोनों का दुख अन्धापन ही है, पर यह बताइए कि दोनों दुखों में कौन-सा दुख अधिक गहरा है?"

आदमी दुख पाकर सुख पाता है, तो जल्दी ही भूल जाता है उस पहले दुख को, यह मनुष्य की आम मनोवृत्ति है। इसलिए सबको आशा थी कि ये महाशय यही कहेंगे कि आँख वाला रहकर अन्धा होना अधिक दुखदायी है, क्योंकि उस हालत में मनुष्य अपने पुराने सुख को याद करता रहता है और इससे उसका वर्तमान दुख डबल दुख हो जाता है। इस आशा के विरुद्ध उन्होंने कहा—"जीवन के आरम्भ में अन्धा होना बहुत कड़वा दुख है। बरसों आँख वाला रहकर जब आदमी अन्धा होता है, तो उसकी आँख ही बेकार होती है, कल्पना तो अन्धी नहीं होती। वह जब गुलाब का फूल हाथ में लेता है, कल्पना की आँख से उस फूल के सौन्दर्य को देखता रहता

है, इस तरह उसे फूल का पूरा सुख मिल जाता है, पर जन्मान्ध या बाल-अन्ध फूल को हाथ मे लेकर उसके स्वरूप-सौन्दर्य का बोध पाने के लिए अपनी कल्पना को दौडाता है। यह कल्पना कहाँ जाय दौडकर ? उसका चक्कर काटकर उसके पास आ जाती है। वह चाहता है सौन्दर्य बोध पाना, पर पा नही सकता और तडपकर रह जाता है। इस तडप की गहराई का हम यो समझें कि उसे सुन्दर स्त्री और कुरूप स्त्री का भेद ही अनुभव नही होता। जरा आगे बढें, तो उसके लिए चाद और तवा एक ही आकार प्रकार की चीज होती है। जो आँख वाला रहकर अन्धा होता है, उसकी बाहर की आखें फूटती हैं, पर जो आरम्भ मे ही अन्धा हो जाता है, उसकी तो बाहर-भीतर दोनो ही आँखें फूट जाती है।'

•

दैनिक पत्र मेरे सामने रखा है और एक समाचार को मैं बराबर पढ रहा हूँ। समाचार यह है—'अमृतसर की पुलिस ने लोहागढ गेट के बाहर अन्ध विद्यालय के सामने बाबा भूरीवाले के डेरे से एक सन्त का शव उठाकर सुलतान विंड गेट के पास एक समाधि मे गाड दिया। बताया गया है कि चील मण्डी के एक आदमी ने बाबा भूरीवाला से कहा कि मेरे गुरु गगाधर का दो वर्ष हुए देहान्त हो गया था। मुझे वे स्वप्न मे मिले है। उन्होने मुझे आदेश दिया है कि यदि बाबा भूरीवाले मुझे समाधि से निकाल लें, तो मैं कुछ दिन बाद पुन जीवित हो जाऊँगा। बस बाबा गगाधर के शव ककाल को समाधि से निकाल लिया गया और उसे भूरीवाले बाबा के डेरे मे रख दिया गया। बात शहर मे फैल गयी, लोग डेरे मे आने लगे, चढावे चढने लगे और इस तरह दो-तीन दिन मे कोई दस हजार रुपये उस शव पर चढे। किसी ने पुलिस मे खबर कर दी। पूछताछ पर यह ढोग खुला और शव-ककाल को फिर दफना दिया गया।"

समाचार पढ-पढकर मैं सोच रहा हूँ कि क्या यह सम्भव है कि दो वर्ष से जमीन में गडा मुर्दा दुबारा जी उठे ?

नही यह एक बार नही सौ बार असम्भव है!

क्या कोई सूखा-सडा मुर्दा पूजनीय होता है?

नहीं, यह एक बार नहीं सौ बार असम्भव है!

तो फिर उस मुर्दे व फिर जी उठने का विश्वास होश-हवास ठीक रहते इतने लोगो ने क्या किया और जो लोग पास के अन्ध-विद्यालय को एक पैसा नही दे सकते, उन्होने उस मुर्दे पर दस हजार रुपये क्यो चढा दिये ?

●

गगा निकल आयी, गगा मैया ने दर्शन दिये, चलो दान करने, हल्ला मच गया उस दिन गाजियाबाद मे सुबह ही सुबह ! पास के एक जोहड मे, जो कल शाम तक सूखा पडा था, रात म पानी भर आया। यही थे गगा मैया के दर्शन। लोग दौड पडे, खूब नहाये, जय गगे के नारे लगाये, गगाजल भर लाये और सैकडो रुपये चढावा चढ गया। शाम तक जोहड फिर सूख गया। म्यूनिसिपलिटी के इजीनियर की जाँच से पता चला कि पास के बहते गन्दे नाले म अचानक ज्यादा पानी बढ आने से कुछ पानी इस जोहड म किसी भीतरी छिद्रनली स रिस आया था।

क्या यह सम्भव है कि मीलो दूर बहती गगा बीच के गाँवो, शहरो, को लाँघकर किसी जोहड म आ कूदे ?

नही, यह एक बार नही सौ बार असम्भव है !

तो फिर वे हजारो लोग उस गन्दे पानी मे लथपथ होने को क्या आ कूदे ?

●

और यह किस्सा है 1958 का !

मौसम कडकती गरमी का, गाँव शहरो से दूर का और इलाका काठिया-वाड का। एक कहानी वेद की कथा बन गयी। एक युवक काठिया वात के रोग स लुजपुज हो गया। दद ऐसा कि चीखें निकलीं ... अपनी जिन्दगी से और जगल के कुए म जा कूदा कुए के जल पर आसन जमाये समाधि मे लीन मे जा गिरा।

इस कुएँ के जल से स्नान करेगा, तुरन्त चंगा हो जाएगा।"

बस फिर क्या था, पैदल वाला पाँवों पर, साइकिल वाला साइकिल पर, मोटर वाला मोटर पर और गाड़ीवाला गाड़ी पर दौड़ पड़ा और दूसरे दिन प्रातःकाल तक कई हजार आदमी वहाँ पहुँच गये। बड़े उत्साह में थे लोग, पर इस खबर ने सबको सन्न कर दिया कि जिस कुएँ के पानी में स्नान कर वे लोग रोगमुक्त होने आये हैं, वह कुआँ तो बरसों से सूखा पड़ा है। हजारों आदमियों के मलमूत्र से गन्दा हुआ क्षेत्र, खतरनाक गरमी, न आस-पास पानी, न खाने का प्रबन्ध, देखते-देखते हैजा फैल गया और कई सौ आदमी मर गये।

क्या यह सम्भव है कि कोई कुएँ के पानी पर बैठे और किसी की उंगली पकड़कर बिना सीढ़ियों के ऊपर आ जाय?

नहीं, यह एक बार नहीं, सौ बार असम्भव है।

क्या यह सम्भव है कि किसी कुएँ का पानी कुछ दिनों के लिए सब रोगों की दवा बन जाए?

नहीं, यह एक बार नहीं, सौ बार असम्भव है।

तो फिर हजारों आदमी इस कुएँ के पानी में नहाकर अपने भयंकर रोगों से मुक्त होने की आशा में क्यों दौड़ पड़े?

●

1927 की एक बात याद आ गयी, जो इन सब बातों को एक ऐसी तेज रोशनी से उजागर करती है कि कोई वहम बाकी न रहे। मैं एक संस्कृत विद्यालय में अध्यापक था। विद्यालय जंगल में था। कभी-कभी रात में चोर आता और विद्यार्थियों के जूते, कपड़े उठा ले जाता। योजना बना कर एक रात में हमने उसे पकड़ लिया और खम्भे से बाँध दिया कि सुबह पुलिस को दे देंगे।

उन दिनों कार्तिक का महीना था और सुबह ही सुबह बहुत-सी स्त्रियाँ पास के तालाब पर स्नान करने आया करती थीं। उनमें से जो स्त्रियाँ उस खम्भे के पास से गुजरीं, हम देखकर स्तब्ध रह गये कि उन स्त्रियों ने उस बँधे हुए चोर पर भी पैसे चढ़ा दिये, जैसे वह भी किसी देवता की मूर्ति हो।

क्या बात थी उन बातो मे ? क्या बात है इस बात मे ? और क्या है वह वहम, जो इस रोशनी मे बाकी न रहे ?

अमृतसर के मुर्दे को जिन्होंने पूजा, उनके लिए सन्त का आधार था, गाज़ियाबाद की गगा म नहाने को जो दौड़े उनके लिए गगा के प्रति दैवी भावना का आधार था और काठियावाड के कुएँ की ओर रोगमुक्त होने को जो दौड उनके लिए भी सन्त का आधार था, पर उस चोर पर जिन्होंने पसा चढाया, उनके लिए तो कोई आधार न था ! यह आधार-हीनता कहती है कि चाहे मुर्दे की बात हो, चाहे गगा की और चाहे कुएँ की, सबका आधार, सबकी जड एक है कि आपरेशन की जरूरत है।

श्रद्धा की आख है विश्वास और यह विश्वास ही मनुष्य की निर्णायक शक्ति है। युग-युगो से परिस्थितियो की धूल मे रहते यह विश्वास की आख अन्धी हो गयी है। उस अमरीकी ने कहा था कि एक वे हैं, जिनकी आख अन्धी होती है और एक वे है जिनकी कल्पना भी अन्धी हो जाती है पर मैं कहता हूँ एक वे होते है जिनका विश्वास अन्धा हो जाता है और आखें देखती रहती है। जिनकी आख अन्धी होती है, वे कल्पना कर सकते है, जिनकी कल्पना भी अन्धी होती है, वे किसी चीज़ के स्वरूप का अनुभव ही नही कर पाते, पर जिनका विश्वास अन्धा हो जाता है, वे अशुभ को शुभ और असम्भव को सम्भव मानने लगते है और इसीलिए बार बार गड्ढो मे गिरते और ठोकरें खाते रहते है।

हम उन्ही म हैं और हमारी स्थिति यही है। आवश्यकता है कि हमारे विश्वास की आखो का आपरेशन हो, मोतियाबिंद हटे और हम शुभ को अशुभ और असम्भव को सम्भव मानने से बच सकें।

पैसे की प्यास

• •

सिकन्दर ने इतनी लडाइयाँ जीती कि उसकी अघोषित उपाधि बन गयी—'विश्वविजयी' और यह उसके जीवन का इस तरह अभिन्न अग हो गयी कि उसका नाम ही पड गया 'विश्वविजयी सिकन्दर !'

उस दिन स्वाध्याय मे उसके जीवन का एक सस्मरण पढने का अवसर मिला। अपनी विश्व विजय-यात्रा म सिकन्दर एक ऐसे नगर म पहुचा, जहाँ स्त्रिया ही स्त्रियाँ थी, कोई भी पुरुष न था। स्त्रियाँ भी निरस्त्र और निद्वन्द। सिकन्दर क लिए यह एक नयी और विचित्र परिस्थिति थी। उस लडता से तो लडन का अभ्यास था, पर जब उसके सामन शस्त्रधारी योद्धा नही, निरस्त्र नारियाँ थी—इनसे वह कैस निपटे ?

अहिंसा की शक्ति का अध्ययन करन वालो के लिए यह परिस्थिति महत्त्वपूण है। हिंसा को हिंसा स टकराने की आदत है। बडी हिंसा छोटी हिंसा के सामने बलवती है पर अहिंसा के सामने हिंसा क हथियार परेशान हो जात है। हाँ प्रश्न अनुपात का है। जस छोटी हिंसा के सामन बडी हिंसा जीतती है बडी क मुकाबले छोटी नही, वस ही बडी अहिंसा अपने स छोटी हिंसा को जीत सकती है छोटी अहिंसा बडी हिंसा को नही।

ननकाना साहब म सिखो ने सत्याग्रह किया, तो बडी तकडी मार पडी सत्याग्रहियो पर। 1920 से 1942 तक गांधी आन्दोलन म उसस क्रूर पिटाई कभी नही हुई। शरीर के लोथडे उधड जात थे हड्डिया टूट जाती थी—खून म लथपथ हो जाना तो मामूली बात थी। स्थिति इतनी नृशस थी कि दखने वाला म स कई आदमी बेहोश हो जाते थ, पर *सत्याग्रहियो*

मे अहिंसा का भाव इतना सबल था कि अन्त मे हिंसा हार गयी और अहिंसा जीती।

पेशावर मे अँग्रेजी सरकार की फौजो का सत्याग्रही पठानो पर गोली चलाने से इनकार करना भी अहिंसा के मुकाबले हिंसा का आत्म समर्पण ही तो था। तो निरस्त्र और निर्द्वन्द्व स्त्रियो के उस नगर मे पहुँचकर सिकन्दर की हिंसा शक्ति हक्की-बक्की हो गयी। इस हकबकाहट पर एक स्त्री ने ऐसी गहरी बौद्धिक और नैतिक चोट की कि सिकन्दर का शायद-सन्तुलन अस्त व्यस्त हो उठा। उस स्त्री ने शान्त भाव से कहा—"तुम हम से लड़ो और हम हार गये, तब भी इतिहास तुम्हारी विजय के गीत नही गायेगा, उल्टे यही कह कर तुम्हे लांछित करेगा कि सिकन्दर निरस्त्र स्त्रियो से लड़ा था। फिर लड़ाई तो लड़ाई ही है, इसमे हार जीत एक सयोग है, जो कही हमारा दाँव बैठ गया और हमने तुम्हे हरा दिया, तो इतिहास कहेगा कि सिकन्दर बड़ा विश्व विजयी बनता था, पर स्त्रियो ने उसे हराकर भगा दिया।"

सिकन्दर हक बक कि कहे, तो क्या कहे और करे, तो क्या करे, पर कुछ न कहना, कुछ न करना तो पराजय की स्वीकृति है और हार मानना सिकन्दर के स्वभाव के विरुद्ध, सम्मान के विरुद्ध, फिर वह करे? किंकर्तव्य-विमूढ़ता मे उसके मुह से निकला—"मुझे भूख लगी है, रोटी दो।"

कुछ स्त्रिया गयी और कपड़े से ढककर थाल ले आयी। थाल अब सिकन्दर के सामने— "लो खाओ।" सिकन्दर ने कपड़ा हटाया, तो देखा—सोने के थाल मे, सोने की ईंटे रखी हुई है। देखकर सिकन्दर तमतमा उठा —"क्या सोना कही खाया जाता है?"

एक स्त्री ने कहा—"महान सिकन्दर, सोना नही खाया जाता और रोटियाँ खायी जाती हैं, तो क्या तुम्हे अपने देश मे रोटिया नही मिलती थी, जो तुम दूसरों की रोटियाँ छीनने को निकल पड़े?"

सिकन्दर बिना कुछ कहे किये वापस अपनी छावनी मे लौट आया और कुछ करने से पहले उसने उस नगर के द्वार पर लिखवा दिया—"सिकन्दर अबोध था। उसे इस नगर की नारियो ने बोध दिया।"

सिकन्दर की प्यास बुझ गयी, पर उसका सस्मरण पढ़कर मन मे प्रश्न उठा—मनुष्य मे सोने की, धन की, यह अथाह प्यास क्यो है? भोजन, वस्त्र,

निवास, सक्षेप मे सुख शान्तिमय रहन-सहन मनुष्य का मिले, यह उचित इच्छा है और इस इच्छा की पूर्ति के लिए आवश्यक धन का उपाजन मनुष्य करे, यह बात समझ म आती है पर इसके बाद की अनन्त हाय-हाय उसम क्यो है ?

प्रश्न ने मुझे खूब मथा पर समाधान कुछ हाथ नही आया। मरी चिन्तन प्रक्रिया यह है कि जिस प्रश्न का समाधान सुलभ न हो, उसे बिना किसी लिप्सा और बेचनी के मन क अन्तरिक्ष म छोड दू अपनी भाषा म अपन अन्तर्यामी को सौप दू। वही मैंने किया।

तीन चार दिन बाद मैं घूमने गया और नहर की झाल पर बठ, पानी की उछल कूद देखने लगा। तभी वहाँ दो युवक आय और मुझ से इतनी दूर बैठ गय कि मैं उनकी बातें साफ साफ सुन रहा था। उनमे एक सिगरेट पीता था, एक नही। न पीन वाले ने पीने वाले स कहा—"तुझे क्या मजा आता है इसम ?"

"कुछ भी नही, कम्बख्त जान का जजाल है।" पीन वाल न उत्तर दिया।

"फिर छोड दे इसे, इससे क्या लिपटा हुआ है तू ?" पहले ने कहा।

"पहले मैं इससे लिपटा, अब यह मुने लिपटा हुआ है। असल म यह कोई शौक नही है, व्यसन है। यह लग ता जाता है बात-बात मे, पर बाद मे छूटता नही, यह जानत हुए भी कि इसम हानि के अतिरिक्त कुछ भी नही है।" दूसरे ने उत्तर दिया।

व दोना उठकर दूर जा बैठे, पर मरे मन म उनकी बातें घुमडती रही। सिगरेट पीने म न मजा है न लाभ, हानि ही हानि है, फिर भी सब उस पीत हैं उसका विश्व-व्यापी प्रचार है। अचानक मेरे मन मे उमडता वह प्रश्न मेरे ध्यान म कौंध गया—मनुष्य मे सोन की, धन की, यह अथाह प्यास क्या है ? और इसक साथ ही यह समाधान भी—यह भी सिगरेट की तरह मनुष्य को लिपटा एक व्यसन है, जो विनाशक होते हुए भी मनुष्य से छूट नहा रहा है।

इस व्यसन की जड कहाँ है ? वह है इस विश्वास मे कि धन मनुष्य क सुख का साधन है और इससे भी बढकर यह कि मनुष्य धन से सब कुछ कर सकता है। विचारक प्रेंट कहता है—"दुनिया मे सबसे वेहूदी गलतफ़हमी

यह है कि धन आदमी को सुखी बना सकता है। मुझे अपने धन से तब तक कोई तृप्ति नहीं मिली, जब तक मैंने उससे नेक काम करने शुरू नहीं किये।"

निश्चय ही महाशय प्रट की तृप्ति का आधार व सत्कर्म थे, यह धन नहीं। यह तृप्ति उन्हें किसी अभागे रोगी को दूर से लाकर एक गिलास पानी पिलाने में भी मिल सकती थी और भटकते हुए किसी बालक को पूछताछ कर उसके घर पहुँचाने में भी।

उद्योगपति कारनेगी तो इस सम्बन्ध म इतने सन्नद्ध थे कि उन्होंने अपनी बात कसम के साथ कही—'कोई आदमी धन कमाकर मर जाये और हरामखोरों के लिए लडने खाने को छोड जाए, इससे बडा गुनाह ही नहीं है। मैं कसम खाकर कहता हू कि अपनी जिन्दगी म अपने सारे धन को परोपकार म लुटा दूगा।"

महाकवि गोल्डस्मिथ इतने उदार थे कि स्वय फटे कपडे पहनकर भी दुखियो की सहायता किया करते थे। रुपये-पैसे की बात उनके मन को कभी प्रभावित ही न करती थी। उनकी सूक्ति है—"सबसे उत्तम साथी है सरलता और स्वास्थ्य तथा सबसे उत्तम सम्पत्ति है सम्पत्ति के ध्यान से बेखबर रहना।"

मोटर व्यवसाय के बेताज बादशाह फोर्ड, गोल्डस्मिथ से एकदम उलट थे। वे ससार की दूसरी सब चीजों से बेखबर रहे और सिर्फ धन की खबर खोज म लगे रहे। बुढापे मे जाकर उन्हें होश आया और दर्द में डूब कर उन्होंने कहा—"मैंने मित्रों का सग्रह नहीं किया और धन के सग्रह मे जीवन लगा दिया। इसी कारण मेरा बुढापा दुख मे बीत रहा है। चार अच्छे मित्रों के बदले मैं अपना समस्त सचित धन देने को तैयार हूँ, पर मैं जानता हूँ कि मुझे सफलता नहीं मिल सकती।"

तो क्या धन एकदम उपेक्षणीय है? त्याज्य है? जीवन म उसका कोई उपयोग नहीं? वह विष ही विष है? उसमे अमृत है ही नहीं? इन प्रश्नो का विराट् चिन्तन गाँधी जी ने किया है। उनका निर्णय है—प्रत्येक उद्यम करने वाले मनुष्य को यह अधिकार है कि वह अपनी उचित आवश्यकताओ —भोजन, वस्त्र, निवास, चिकित्सा और सन्तान-पालन के लिए आजी-

बिका पाय, मगर धन-सग्रह का अधिकार वह किसी को नही मानते। उनकी राय म तो यह चोरी है, अपहरण है, क्योकि जो उचित आवश्यकता स अधिक लता है वह दूसरा की रोजी छीनता है।

इस अपहरण से समाज म विषमता उत्पन्न होती है कि एक तरफ लोग भूख स बचन ता दूसरी तरफ अजीण-बदहाजम स परशान। चिन्तक-चूडामणि मावस ने इस अपहरण को समाज की अस्वस्थता का स्वरूप सुझाया कि नागरिक को उसकी आवश्यकता क अनुसार धन मिल, शेष धन समाज क अधिकार म रह।

थियोडोर पाकर न धन की विषमता के कोढ पर एक आस्तिक की भाषा म प्रकाश डाला— 'मानव हृदय के लिए तगी और तवगरी दोनो ही भार हैं, जसे मानव शरीर के लिए हिम और अग्नि दोनो ही घातक हैं। भुखमरी और पटूपन दोना ही समान रूप से मनुष्य के हृदय स इश्वर को विदा कर देत हैं।'

भुखमरी और पेटूपन दोना से बचने की कामना को सरल हृदय साहित्यिक प्रेमचन्द न—"मैं सोने की दीवार खडी करना नही चाहता, न राकफेलर या कारनगी बनन को मेरी इच्छा है। मैं सिफ इतना चाहता हूँ कि जरूरत की मामूली चीजा के लिए तरसना न पडे।"

जरूरत की मामूली चीजा के लिए तरसने से बचान म धन की सुविधा है, इसस अधिक धन का सग्रह दुविधा का कारण है। मुझे एक दिन इस दुविधा का विचित्र ढंग स साक्षात्कार हुआ। मेरी जेब की सीमा है दस बीस रुपये, पर उस दिन मेरे पास थे बारह सौ रुपय। ये एक मित्र की धरोहर थे।

मैने उन्ह बडी की जेब म डाल लिया और बटन बन्द कर दिय, पर थोडी दर बाद अचानक मेरे मन मे प्रश्न उठा—जेब फटी हुई तो नही है? मैने बटन खोले, नोट बाहर निकाले और जेब के कोना म अपनी उगली घुमायी। जेब ठीक थी, मैंन नोट फिर जेब म डाल लिय, पर फिर मन म वही शका पदा हुई और मैंने फिर नोट बाहर निकाले, पूरी जेब म हाथ फेरा और आँखो से अच्छी तरह देखा। जेब तो ठीक थी ही, नोट फिर जब मे डाल लिय।

बात समाप्त हो गयी, पर समाप्त कहा हो गयी ? बात-बात म जो बात समायी हुई है। नयी बात मन मे उपजी—यह चाकन्नापन क्यो है ? यह चौकन्नापन क्या है ?

चितन ने उत्तर दिया—यह चौकन्नापन भय का पुत्र है। धन मिला, ता भय हुआ कि कही यह खो न जाए, कोई इसे ले न ले। यह भय कहा से उपजा ? यह उपजा इस भावना से कि यह धन मेरे ही पास रह, किसी और के पास न जाए ?

यह चौकन्नापन भय का पुत्र है और भय प्रलोभन का। प्रलोभन का ही परिपक्व रूप है परिग्रह और परिग्रह की पुत्री है तृष्णा—ला आर, और ला ! यह तृष्णा जन्म देती है स्पर्द्धा को—तू ही क्यो लेगा, क्या मै नहा हूँ। इस स्पर्द्धा के गर्भ से जन्म लेता ह युद्ध, जो विध्वस का पिता ह। यहाँ, भय ही युद्ध की प्रसवभूमि है।

सूक्ति है—भय मन क लिए वही करता है, जो लकवा शरीर के लिए, वह हम शक्तिहीन बना दता है। तब प्रश्न—इस भय से बचने का उपाय क्या है ? गाधी जी का उत्तर है—' धन, परिवार और शरीर म से ममत्व का निवारण कर देन के बाद भय कहा रह जाता है !"

अब तक जा सोचा, उसे बटोरे, ता कह—धन मनुष्य को सुविधा देता है, जब उसकी चाह सीमित हो, मर्यादित हा, पर वह भय, प्रलोभन, परिग्रह और युद्ध की दुविधा मे उसे फँसाता है जब उसकी चाह असीमित हो, अमर्यादित हा।

इस निष्कर्ष के अन्तर मे गहरे उतरें, तो मन म उभरता है यह सूत्र—धन क सग्रह की प्यास ससार का सबसे बडा व्यसन है आर ससार का जितनी हानि इस व्यसन से हुई है उतनी किसी दूसरे व्यसन से नही, क्योकि यह प्यास आगे चलकर पद, वैभव और सत्ता की प्यास मे बदल जाती ह। एटमी युद्ध के भय से आज जो ससार घिरा है वह इसी बढी हुई प्यास का फल तो है।

क्या इस व्यसन से मुक्ति का कोई उपाय नही है ? अन्तर की जिज्ञासा चहकती है और ध्यान उसे तुष्ट करता है। महापुरुष मार्क्स का जीवन-दर्शन

व्यक्ति को इस व्यसन से मुक्त करने का उपाय निर्दिष्ट करता है और महामानव गांधी का जीवन धर्म व्यक्ति और समाज दोनों को इस व्यसन से मुक्त करने की विधि का विधान देता है, पर व्यसन की जकड़न इतनी मजबूत है कि अभी मनुष्य के लिए उससे मुक्त होना सम्भव नहीं हुआ।

मेरी आस्था जाग उठी—असम्भव दिखाई दे या अति-कठिन, कितनी भी देर म जाय ससार म ऐसा समय अवश्य आयगा, जब ससार इस व्यसन से अपने को मुक्त करने म सफल होगा।

हरेक मनुष्य व्यक्तिगत रूप म आज से ही इस व्यसन से मुक्ति पाने का प्रयत्न कर सकता है और अपने जीवन को शान्त आनन्दमय बना सकता है, यदि वह फालतू जरूरता से बचे और अपनी इच्छाओं की लगाम कसे रहे।

सार्थक जीवन

• •

"क्या भाई साहब, क्या यह सच है ?"

'सच और झूठ का फैसला तो बाद में होगा, पहले तुम यह बताओ कि तुम्हें अधूरी बात कहने की यह बुरी आदत क्या है ? और तुम यह क्या नहीं समझते कि अधूरी बात कहना उतना ही खतरनाक है, जितना अधूरा काम करना। तुम्हारी हालत उस हकीम के चेले जैसी है, जो बात को अधूरी कहने के, समझने के कारण खूब पिटा था और अपना लाल मुह लेकर हकीम जी के पास लौटा था।"

'भाई साहब, दूसरों को नाम रखना आसान है— पर उपदेश कुशल बहुतेरे' पर खुद उस बुराई से बचना मुश्किल है। अब देखिए न आपने हकीम का भी जिक्र कर दिया और उसके चेले की पिटाई भी बखान दी, पर यह बताया ही नहीं कि वह अधूरी बात क्या थी, जिसके कारण उस बेचारे चेले की पिटाई हुई।"

"मुझे क्या पता था कि तुम इतने भोंदू हो कि तुमने हकीम और उसके चेले की वह बात भी अभी तक नहीं सुनी, जो देहात के अनपढ़ लोग तक कहते सुनते रहते हैं। लो, पहले तुम हकीम जी की बात सुनो, बाद में मैं तुम्हारी पूरी बात सुनकर उसके झूठ-सच होने का फैसला करूंगा।

एक हकीम जी थे। उनके पास एक नौजवान आया और कहा कि मैं आपसे हिकमत सीखना चाहता हूँ। पुराने जमाने की बात है, जब आजकल की तरह आयुर्वेद और तिब्बिया कॉलिज नहीं हुआ करते थे और गुरुओं-उस्तादों की सेवा कर उनके घर पर रहते हुए ही नये लोग पढ़ा-सीखा करते थे। हकीम जी बूढ़े थे और उन्हें सेवा के लिए किसी की ज़रूरत

थी, इसलिए उन्होंने उस नौजवान को अपने पास रख लिया और कहा— "जब मैं किसी बीमार को देखने जाऊँ, तू भी साथ चला कर बस यों ही देखते भालते एक दिन हकीम हो जाएगा।'

कुछ दिनों बाद हकीम जी एक बीमार को देखने गये। उसके पेट में तेज़ दर्द था। हकीम जी ने उसकी नब्ज़ पर हाथ रखा और थोड़ी देर बहुत गम्भीर रहकर कहा— नब्ज़ कहती है कि तुमने कच्चे पक्के अमरूद खाये हैं, इसीलिए पेट में दर्द हुआ है।" बीमार ने हाथ जोड़कर स्वीकार किया कि हकीम जी की बात सच है। हकीम जी दवा बताकर और फीस लेकर लौट पड़े। रास्ते में चेले ने पूछा— 'हकीम जी, जो किताब आपने मुझे पढ़ने को दी थी उसमें यह तो कहीं नहीं लिखा कि नब्ज़ कच्चे अमरूद खाने की बात बता देती है, फिर आपने यह बात कैसे बतायी?" हकीम जी ने कहा— 'हर बात किताब में नहीं होती, अकल से भी काम लेना पड़ता है। बीमार की खाट के नीचे अमरूद के हरे छिलके पड़े थे, बस मैंने कच्चे अमरूद खाने की बात फिट कर दी।"

इसके कुछ दिन बाद एक दिन हकीम जी अपनी रिश्तेदारी में गये थे कि एक आदमी उन्हें बुलाने आया। चेले ने कहा— 'बड़े हकीम जी तो कई दिन में आयेंगे पर चिन्ता की कोई बात नहीं, मैं भी हकीम हूँ, चलो, मैं चलता हूँ तुम्हारे साथ।' वह आदमी चेले को लेकर घर पहुँचा। संयोग की बात, उसके लड़के के पेट में भी दर्द था। चेले ने हकीमाना लहजे में नब्ज़ पर उँगलियाँ रखीं और इधर उधर ताका झाका। बीमार की खाट के नीचे घोड़े की काठी रखी थी। आवाज़ को गम्भीर करके चेले ने कहा —"अरे भाई दर्द न होगा, तो क्या होगा, तूने घोड़ा खाया है।' बीमार ने गुस्से में तमतमाकर कहा—"मैंने घोड़ा खाया है?' चेले ने गर्व की मुद्रा बनाकर कहा—' नब्ज़ साफ कह रही है कि तूने घोड़ा खाया है। हकीम लुकमान का फरमान है नब्ज़ की बात कभी गलत नहीं हो सकती।"

बस फिर क्या था, बीमार बेटा और उसका तन्दुरुस्त बाप, दोनों ने चेले के गालों पर नम्बरवार इतने थप्पड़ मारे कि मुँह सूज गया। रोता-सुबकता बेचारा घर पहुँचा तो देखा हकीम जी खड़े हैं। हकीम जी ने चेले की हालत देखी, तो हैरान होकर पूछा— यह क्या हुआ

बरखुरदार !" चेले ने कहा—"जो आपने कहा था, वही मैंने कहा, पर वे बेवकूफ फीस तो क्या देते, मुझे पीटने में पिल पड़े।" हकीम जी ने कहा—"भाई, इसमें उनकी कोई भूल नहीं। जो अधूरी बात समझता है, अधूरी बात कहता है, उसकी यही हालत होती है। तू यह नहीं समझा कि बात हमेशा लगती हुई कहनी चाहिए, बे-लगती नहीं। अमरूद की बात लगती हुई थी, घोड़े की बात लगती हुई नहीं थी, इसीलिए तेरी यह दुर्गति हुई।" अच्छा हकीम जी और उनके चेले की बात तो पूरी हो गयी और तुम यह भी समझ गये कि अधूरी बात कहने के क्या नतीजे होते हैं, इसीलिए अब तुम अपनी बात पूरी करो कि किस बात की सचाई-झुठाई जानना चाहते हो?"

"भाई साहब, आज मैंने किसी को यह कहते हुए सुना कि 'अजगर करे न चाकरी' पर मेरी समझ में नहीं आया कि इसका मतलब क्या है? इसीलिए आपसे पूछ रहा था।"

"ओह, यह बात है, तो सुनो कि यह भी वही बात है, जो मैं अभी कह रहा था कि अधूरी बात कहना अधूरा काम करने से भी ज्यादा खतरनाक है। बात यह है कि कहने वाले ने ही या तो अधूरी बात कही या फिर तुमने ही अधूरी बात सुनी और उलझ गये, जैसे मकड़ी के जाले में मक्खी, तो लो, पहले तुम पूरी बात सुनो और फिर उसे समझो। पूरी बात यह है—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम,
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।

मोटे तौर पर इसका मतलब यह है कि अजगर किसी की नौकरी नहीं करता और न पंछी ही कोई काम, यानी मजदूरी-नौकरी वगैरह कमाई का काम नहीं करता, सन्त मलूकदास कहते हैं कि सबको भगवान् भोजन देते हैं।

यह है पूरी बात, अब तुम्हारा प्रश्न आता है कि क्या यह बात सच है? तुम्हारा प्रश्न छोटा-सा है, पर इसका उत्तर हां-ना में नहीं दिया जा सकता, क्योंकि इस प्रश्न में जीवनदर्शन समाया हुआ है और जीवन भी हमारे पूरे राष्ट्र का। तो आओ, इसकी गहराई में उतरें। पहली बात तो

न्यह है कि चाकरी का मतलब है पैसे के बदले दूसरे के लिए मेहनत-श्रम करना, फिर उस पसे से अपने भोजन आदि का प्रबन्ध करना, तो हर हालत मे भोजन परिश्रम के बदले मे मिलता है, बिना परिश्रम नही और अजगर अपने भोजन के लिए कितना परिश्रम करता है, इसे वे ही जानते हैं, जिन्होंने महीनो-बरसो जगलो की धूल छानकर अजगरो के जीवन का अध्ययन किया है। लो, तुम्हे समझाऊँ यह बात ! अजगर के शरीर म हाथ नही होते और मुह म दाँत नही होते, इसलिए न वह बेचारा किसी को दबोच सकता है, न चबा ही सकता है, इसलिए अजगर को अपन भोजन के लिए सबसे ज्यादा परिश्रम करना पडता है।

वह किसी झाडी की आड मे अपने लम्बे-मोटे शरीर को समेटकर छिप जाता है और चौकस-चौकन्ना होकर सामने देखता रहता है। घटा और कभी-कभी कई दिना तक भूखी प्रतीक्षा करने के बाद जब कोई खरगोश, लोमडी या हिरन का बच्चा उसे दिखाइ देता है, तो वह पूरी सावधानी और ताकत स अपन शरीर का अगला और भारी भाग उस पर फक उसकी गति म अवरोध पदा करता है और पहले इसके कि वह उसक बोझ से निकलन की कोशिश करे उडनछू हो जाए, अजगर उसे अपनी कुडली म जकड लेता है। उसका शिकार महसूस करता है कि वह एक मजबूत रस्स म बँध गया है। अजगर की कुँडली इतनी मजबूत होती है कि कहत हैं उसम शेर भी फँस जाये तो नही निकल सकता, फिर इन छोटे जानवरा की तो बिसात ही क्या ?

अब अजगर कुडली को साधकर कुछ देर चुप पडा रहता है और जब जानवर थक जाता है अधमरा हो जाता है, छूटने की उछल-कूद बन्द कर देता है, तो अजगर कुडली को एक प्रशिक्षित कारीगर की तरह धनक कोणो मे इस तरह कसता है कि उस जानवर की मृत्यु तो हो ही जाती है, हड्डियाँ भी टूट जाती हैं। अजगर अपने स्पश से यह भापता रहता है कि इस जानवर की कौन-सी हड्डी अभी पूरी है, खडी है या सस्त है। जब अजगर अपनी जकडन के दबाव से जान लता है कि जानवर अब जानवर नही रहा और घुटी हुई दवाओ की तरह मास का एक बडा लोयडा बन गया है तो उसे एक तरफ से अपन मुह म लेता है, पर दांत न होने स चबा

तो वह सकता ही नहीं, उसे सटकने लगता है, यानी पूरे जानवर को धीरे-धीरे एक ग्रास की तरह गले से नीचे उतारने लगता है। देखने वाले कहते हैं, इस काम मे उसे कभी-कभी कई दिन लग जाते है। मोटे हाथ की भारी भरकम महिला के हाथ मे काच की चूडी उतारना-पहनाना जितना मुश्किल है, उस मसले जानवर को बिना दाँत के मुह से गले मे उतारना उससे भी मुश्किल है, क्योंकि महिला के मोटे हाथ मे जरा भी तनाव आ जाए, तो चूडी चटक जाती है, पर अजगर के गले की ढील जरा सा खिचाव न ले, तो जानवर की लाश का कोई भी उभरा हुआ अश गले मे फस जाता है, खुद अजगर की ही जान गले म आ जाती है।

अब समझे आप कि अजगर का अपने भोजन के लिए किसी भी चाकरी करने वाले स अधिक काम करना पडता है। और पछी ? वह तो अजगर स भी अधिक दौड धूप, परिश्रम करने को विवश है, क्योंकि अजगर का भोजन उस एक जगह, एक जानवर के रूप म मिल जाता है, पर पछी का भोजन तो दाने दाने और कण-कण के रूप म एक बडे और अनजाने क्षेत्र म बिखरा रहता है। आपकी रसोई के बाहर पडा रोटी के टुकडे का एक नन्हा अश चिडिया को मिलता है। खुशी खुशी वह उसे खाती है और ठुमक-ठुमक कर आपके पूरे चौक म घूमती है, पर उसे और कुछ नही मिलता। वह उडकर, दूसरे घर जाने की तयारी करती है, पर आपकी नाली म उसे दाल का एक दाना दिखाई दे जाता है। चिडिया उसे उठाती, खा लेती भी पाती है और फिर पूरी नाली को आखो से तौलती है, पर और कुछ नही है। वह दूसरे घर चली जाती है और शाम तक इसी तरह दाने-दाने की तलाश करता है, पर कौन जान सकता है कि जब शाम को वह अपने घोसले मे रात बिताने के लिए पहुँचती है, तो वह छकी हुई होती है या अधपेट भोजन पाने के कारण थकी हुई ? अब कहने वाला मलूकदास है। या दादू मलूका उसने तो यह दिया कि अजगर चाकरी नही करता और पछी काम नही करता, पर क्या किसी बडे से दफ्तर मे काम करने वाला कोई बाबू या साहब कह सकता है कि उसे अपने भोजन के लिए अजगर और पछी से ज्यादा श्रम अपने भोजन के लिए करना पडता है ? अब तुम्हें बताना कि जो बात कहने वाले ने कही और तुमने सुनी, वह

सच है या झूठ ?"

"भाई साहब, आपने तो आज मेरी भीतर की आँख खोल दी। मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि एक नन्ही सी चिड़िया और एक भूत-से अजगर को अपना पेट भरने के लिए कितनी गहरी नाकेबन्दी या भाग दौड़ करना पड़ती है, पर यह तो बताइए कि जब निरन्तर काम और लगातार मेहनत से किसी को भोजन और भोजन क्या कुछ भी नहीं मिल सकता, तब हमारे देश में इस तरह की बातें घर घर क्यों फैली हुई हैं, जो हैं तो एकदम निकम्मी, पर हम उन्हें दोहराते हैं इस तरह कि जैसे हम किसी आध्यात्मिक रहस्य का उदघोष कर रहे हों ?"

"बहुत बढ़िया प्रश्न है तुम्हारा। मुझे खुशी है कि तुम बात की गहराई में उतर रहे हो और जीवन तत्त्व की सचाई तक पहुँचना चाह रहे हो। बात यह है कि आलसीपन, कमचोरापन निकम्मापन, जिम्मेदारियों से बचने का भाव और मसला समस्याओं के सामने से कन्नी काट जाने का तौर तरीका हमारा चरित्र हो गया है। हम फालतू गपशप में उपयोगी और कीमती समय खराब कर देते हैं और इसके लिए कभी न सोचते हैं, न पछताते हैं।'

"वाह भाई साहब, यह तो आज आपने 'अजगर करे न चाकरी' की पूरी गीता ही खोल दी। मैंने एक आदमी से एक कहावत सुनी थी कि 'रिज़क का ठेका तो रहीम ने ले रखा है फिर काहे का फ़िकर।' मालूम होता है कि वह भी ऐसा ही आदमी था कोई।"

'लो फिर सबके दाता राम की कथा तो तुमने सुन ही ली, अब रहीम के ठेके की भी बात सुन लो। हमारे देश में एक बहुत बड़े शायर हो चुके हैं उस्ताद ग़ालिब। शायरी के सिवा कुछ करते नहीं थे, तो चूल्हा अक्सर रोजा करता था। बादशाह ने उनकी पेंशन बाँध दी। उस्ताद खज़ाने से पेंशन के रुपये लेते और मयखाने में दे आते और महीने भर शराब पीते रहते। महीना खत्म हुआ तो बीवी ने कहा—"जाओ, पेंशन ले आओ, घर में आटा-दाल नहीं है।" उस्ताद इधर-उधर घूमकर और शराब पीकर आये, कहा—"खज़ांची ने चार-पांच दिन में पेंशन देने को कहा है," पर कई महीने बीत गये और खज़ांची से पेंशन नहीं मिली। अक्सर यही हाल रहता।

एक दिन उस्ताद कही गये हुए थे, तो उनकी घरवाली बुरका ओढ कर बेगम के पास जा पहुँची और कहा—' खजाँची पेंशन नही देता, आज कल करता रहता है। हर महीने पेशन मिल जाया करे, तो मेहरबानी हो।" बेगम ने बादशाह स कहा, बादशाह ने खजाची को बुलाकर डाटा—'शायर साहब की पेशन क्या नही दी जाती।' खजाँची अपना रजिस्टर उठा लाया। पशन हर महीने दी गयी थी और इस समय तक शायर साहब तीन महीने की पशन अगाहू यानी एडवास ले चुके थे।

दूसरे दिन बादशाह ने उस्ताद गालिब को दरबार मे बुलाया और कहा— यह पशन का क्या घपला है कि यहा से जाती है पर घर नही पहुचती ?"

उस्ताद ने कहा—' बादशाह सलामत, कुरान शरीफ के मुताबिक खुदा ने बन्दो के लिए रिज्क का ज़िम्मा ले रखा है तो हुजूर रिज्क की ज़िम्मदारी खुदा पर छोड देता हू और शराब का इन्तजाम खुद कर लेता हूँ, क्योकि उसका ज़िम्मा उन्होने लिया नही है।"

बादशाह ने तो इसका जवाब बादशाही वाला दिया कि पशन दुगनी कर दी और खजाँची को हुक्म दिया कि पशन का बढा हुआ हिस्सा खजाने का आदमी खुद जाकर शायर साहब की घरवाली को दे आया करे, पर हरक को न तो शाही पेंशन ही मिल सकती है और न शाही खज़ाने का आदमी घर जाकर श्रीमतीजी को नोटो की गडडी ही थमा सकता है। दूसरे लोग तो श्रम मेहनत करके ही अपना जीवन सुखपूर्वक चला सकते हैं। मेहनत स बचन का आलसीपन मन म आया कि डूबी नाव और नाव भी लकडी की नहो, जिन्दगी की नाव पर यह जानते हुए भी कि आलसीपन, कामचोरीपन आदमी को कहाँ तक गिरा दता है, इसकी एक मिसाल हमारे लोक जीवन म सुरक्षित है।

एक था जुलाहा और एक थी जुलाही। जुलाही आलसियो की सरदार थी, जुलाहा भी कुछ कम न था। ऐसे घर म लक्ष्मी जी कहा झाँकती हैं वहाँ तो दरिद्रता कगाली ही अपना डेरा जमाती है। कभी सुबह चूल्हा गरम, तो शाम को ठडा और कभी शाम को गरम, तो सुबह को ठडा यह हाल तो अक्सर ही रहता था, पर एक बार एसा हुआ कि तीन दिन ठडक

रही। जब चौथे दिन पेट टूटन लगा, तो दोनों उठे अपनी खाट स और घर की हंडिया कुलडी देखी। बस नमक ही था घर म, न आटा न लक्डी। योजना बनी कि श्रीमान्‌जी जाएँ और जस तैस कहीं स आटा लायें और श्रीमतीजी लकडियों का इन्तजाम करें। श्रीमती जी यह सोचकर फिर खाट पर पड गयी कि आसपास तो किसी से आटा मिल ही नहीं सकता, क्योंकि न कोई दूकान है, न मकान, जिसस उधार न लिया हो और जिस का दिया हो, इसलिए कहीं दूर ही काम बनेगा, तो दोपहर तक पडे रहन म कोई हज नहीं, पर जब दिन ढलाव पर आ गया, तो श्रीमतीजी न सोचा कि अब मियाँ आटा लेकर आयेंगे, तो लकडियों के लिए जगल जाना पडेगा। इस सोच ने उन्ह परेशानी म डाल दिया और परेशानी म सभी को याद आता है इश्वर, तो घुटन मोडकर खाट पर बठ गयी और लगी प्राथना करने—' परवरदिगार, मेरे खसम को कहीं आटा न मिले, वरना मुझे लकडियों के लिए जाना पडेगा।" मतलब साफ कि भूखों मरना मजूर, पर उठकर जाना, सफलता के लिए प्रयत्न करना, मजूर नहीं।

ऐसे लोग अपने देश का कलक भी हैं और खतरा भी, क्योंकि न उनम आत्मविश्वास रहता है, न आत्म गौरव और किसी के लिए भी उन्ह बहका लेना या खरीद लेना साधारण बात होती है। इसीलिए अल्लमा इकबाल ने अपने निराले ढंग म कहा है—

ऐ तायरे लाहूती, उस रिज्क से मौत अच्छी,
जिस रिज्क स आती हो, परवाज म कोताही,

ऐ उडने वाले जानवर, उस रिज्क स, भोजन से, सुख साधन स मौत अच्छी है जिस रिज्क स, भोजन से, सुख-साधन से उडने की शक्ति मे, जीवन की स्वतन्त्रता म कमी आती हो।

मतलब यह कि हम चोरी स तो बचें ही, कामचोरी और हराम खोरी से भी बचें, क्योंकि इनम फँसकर आदमी जीवन की व्यवस्था का खो बठता है और अव्यवस्थित जीवन, जीवन की साथकता को नष्ट कर उसे निरथक बना देता है।

• • •